मन्त्र विज्ञान

(जीवन की सफलता के लिये दुर्लभ मन्त्र प्रयोग)



प्रो0 राजनाथ त्रिपाठी

शिव संस्कृत संस्थान, वाराणसी

प्रतिष्ठाधर्माचार्य पं० श्री वसिष्ठ त्रिपाठिने
सबहुमानमुपहरामि -
रमाकान्त त्रिपाठी
15/04/2019

मन्त्र-विज्ञान

जीवन
की
सफलता
के
लिये
कुछ
दुर्लभ
मन्त्र
प्रयोग

ॐ मां क्रीं

मन्त्र-विज्ञान

(जीवन की सफलता के लिये कुछ दुर्लभ मन्त्र प्रयोग)

ग्रन्थकार :

प्रो० राजनाथत्रिपाठी

पूर्व आचार्य

सांख्ययोगतन्त्रागमविभागे

सम्पूर्णानन्दसंस्कृत विश्वविद्यालये

वाराणस्याम्-२२१००२

सम्पादकद्वय :

डॉ० उमेश त्रिपाठी

डॉ० साधना त्रिपाठी

शिव संस्कृत संस्थान, वाराणसी

प्रकाशक :

शिव संस्कृत संस्थान

(प्राचीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के प्रकाशक तथा वितरक)

कमला नगर (पाण्डेयपुर), वाराणसी-२२१००७

सम्पर्क सूत्र : 9450540135

अन्य प्राप्ति स्थान :

विश्वभारती संस्कृत संस्थान

(आवास विकास कॉलोनी के पास), दौलतपुररोड (पाण्डेयपुर),

वाराणसी-२२१००२

सम्पर्क सूत्र : 9450557685 Email : vbss591@gmail.com

ISBN 978-93-82354-12-3

प्रथम संस्करण : २०१८

अक्षर संयोजन : राज ग्राफिक्स, नाटी इमली, वाराणसी

मोबाइल : 9935685428

MANTRA-VIJNAN

Writer :
Prof. Rajnath Tripathi
Prof.
Deptt. of Sankhya Yoga Tantragam
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221002

Editor :
Dr. Umesh Tripathi
Dr. Sadhana Tripathi

SIVA SANSKRIT SANSTHAN, VARANASI

Publisher :
SIVA SANSKRIT SANSTHAN
(Oriental Publishers & Distributors)
Kamala Nagar, Pandeypur, Varanasi-221007

Contact No. : 9450540135

Also Can be Had of :
VISWABHARATI SANSKRIT SANSTHAN
(Near Aawas Vikas Colony)
Daulatpur Road, Pandeypur, Varanasi-221002
Contact No. : 9450557685
Email : vbss591@gmail.com

ISBN 978-93-82354-12-3

First Edn. 2018

Photo Composing :
Raj Graphics, Nati Imli, Varanasi Mobile : 9935685428

पुरोवाक्

'वच-परिभाषणे' इस पाणिनीयधातुपाठ में 'वच्' धातु किसी गूढ़ रहस्य को समझाने, समझने, परिचित होने के लिये किया जाता है। पुर-पुरा का तात्पर्य सबसे आगे, पहले, विषय में प्रवेश करने आदि के अर्थ में होता है। जिस प्रकार घर का दरवाजा, ग्राम-नगर आदि में जाने के गेट, दरवाजा, मार्ग आदि होते हैं उसी प्रकार किसी नाटक, ग्रन्थ, कथ्य, काव्य आदि के मौलिक तात्पर्य का अर्थ ही पुरोवाक् है। 'मन्त्र विज्ञान' नामक प्रस्तुत ग्रन्थ में यत: मन्त्र अत्यन्त गोपनीय रखने का नियम है तथापि गोपनीय रखते-रखते कितनी ही विद्यायें, योग, आयुर्वेद के औषधियाँ, पदार्थों, कहावतों, उदाहरणों को परम्परा से प्राप्त जिन अर्थों में इन शब्दों का प्रयोग पहले होता था वह परम्परा प्राय: परिवर्तितकाल में लुप्त-सी हो गई हैं। घर, खानदान, देशों के कितने रीति-रिवाज, प्रचलन, परस्पर के सम्बन्ध प्राय: इसी प्रकाशन के अभाव में कितनी अच्छी और अत्यन्त आवश्यक भी परम्परायें आज लुप्त-सी हो गई हैं जो पहले कोई किसी शक होने पर पूर्वजों में जो उपाय प्रचलित थे वह वर्तमानकाल का आधुनिक-भौतिक जीवन में लुप्त-सी हो गई हैं। विशेषकर भारतवर्ष प्राचीन परम्पराओं में देश-काल के अनुसार जो ज्ञान-विज्ञान, परस्पर मधुर-सम्बन्धों, भाई-चारे के जो नियम थे, वह आधुनिक युग में यह कहकर कि यह रूढ़िवादी परम्परा है, ऐसा कह कर आधुनिक होने का दम्भ रखने वाले लोग, क्या व्यवहार, क्या समाज, अपितु शास्त्रीय शाश्वत सुख-शान्तिदायक परम्परा का खण्डन करते रहते हैं, ऐसे लोग किन सार्वजनीन परम्परा का निर्माण कर रहे हैं, यह विज्ञों के लिये विचार का विषय है।

भारतवर्ष के शाश्वत पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति में धर्म और मोक्ष की तो कल्पना ही लुप्तप्राय हो रही है। गाँव का हर व्यक्ति गाँव के किसी की

बेटी को अपनी ही बेटी मानकर रक्षा करते थे। यदि एक व्यक्ति के घर में चोरी, आग लगने, बीमार होने, शादी-विवाह में सबका सहयोग होता था, वह अब आधुनिकता की आँधी में प्राय: देखने को नहीं मिलते, भले कोई अपनी मौत से मरे अथवा जिये। विवाह, पर्व, व्रत आदि के प्राचीन नियम, वस्त्र-वेशभूषा, भोजन-पानी के जो नियम सर्वहितकारी थे, आज उनका प्राय: अभाव देखा जा रहा है। ऐसे इस आँधी में कुछ लिखने-बोलने की अपेक्षा मौन रहना ही ठीक है ऐसा कहकर बैठ जाना ठीक भी नहीं है। **'स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां मा प्रमदितव्यम्'** अर्थात् निरन्तर जिज्ञासा को लेकर उचित स्वाध्याय, उचित मार्ग पर चलना दूसरे को भी ऐसा करने के लिये प्रेरित करना, यह समझदार व्यक्ति का आवश्यक कर्त्तव्य है। आर्थोडाक्स और रूढ़िवाद यह दो आधुनिक विचार पुराने को बुरा नये को अच्छा कहकर लोभ और स्वार्थवश अपने मन का करना क्या सुख की कसौटी पर खरा उतरेगा?

अत: खूब सोच-समझकर ही प्राचीनता का त्याग और आधुनिकता को स्वीकार करना चाहिये। आज विज्ञान की कसौटी पर प्राय: ऋषियों-मुनियों के स्थापित सिद्धान्त सर्वथा सत्य और सबके कल्याण के लिये उपयुक्त प्रतीत हो रहे हैं। अत: नीतिकारों ने सत्य ही कहा है—

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं च निसेव्यते।
तस्य ध्रुवं पदं नष्ट अध्रुवं नष्टमेव च॥

—(चाणक्यनीति)

अर्थात् जो मोहग्रस्त मन्दमति व्यक्ति निश्चित कल्याणकारी मार्ग को छोड़कर अपरीक्षित विपरीतमार्ग का अवलम्बन करता है वह अपने निश्चित कल्याणमार्ग को छोड़ कर अनिश्चित कल्याणमार्ग को अपनाने वाला मूर्ख व्यक्ति प्राय: नष्ट हो जाता है। अत: अत्यन्त शान्त और सम्यक् विचार कर ही निश्चित परम्परा को छोड़कर नये मार्ग को अपनाना चाहिये। भगवान कृष्ण ने भगवद्गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुये कहे हैं कि हे अर्जुन! मोह नाश के लिये जिस कल्याणकारी मार्ग का उपदेश सृष्टि के प्रारम्भ में मैंने ब्रह्मा जी को दिया था वह मार्ग ब्रह्मा जी ने अपने मानसपुत्र सूर्यनारायण को दिया। सूर्यनारायण ने अपने पुत्र मनु जी को तथा मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को, उन्होंने अपने पुत्र ध्रुव जी को ध्रुव जी अपने पुत्र राजा जडभरत को तथा उन्होंने अपने पुत्र-पौत्रों को दिया। इस प्रकार यह योगविद्या क्रमश:

सूर्यवंश, चन्द्रवंश, निमिवंश के माध्यम से क्रमशः राजा सगर, हरिश्चन्द्र, भगीरथ आदि से होती हुई श्रीरामचन्द्र सहित उनके भाइयों में आयी। वहीं से क्रमशः बुद्ध और प्रथम तीर्थङ्कर जड़भरत से लेकर दुष्यन्त, ययाति, सर्याति, कुरु, पुरु, यदु, वसुदेव से होकर हमारे तथा बलराम जी तक आई है। अब यह सर्वकल्याणकारी योगविद्या मैंने तुम्हें दिया है। अतः इस योगविद्या से तुम अपना कल्याण करने के लिये मेरे इस वचन को सुनो—

श्रीभगवान उवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥
एवं परम्पराप्राप्तं योगो नष्टः परन्तपः।
स एवायं मया तेऽद्य योगः पुरातनः॥
भक्तोऽसि सखा चेति रहस्यमेतदव्ययम्॥

—(गीता ४/२.५ इति।)

इस प्रकार यह योग राजयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग, भक्ति-योग, मन्त्रयोग, लययोग, अष्टाङ्गयोग आदि योग से सब शास्त्र और लोक में प्रतिष्ठित हुआ है। आज यही योग भारतवर्ष से सभी ओर विस्तृत हो रहा है। योग की समस्त शक्ति प्रणव ॐकार के रूप में संकलित है। मन्त्रराशि में साबरमन्त्र भी हैं, जिनका विस्तार आदिवासी, वनवासी, कोल-भील, देव, दावन, मानव आदि में प्रचलित है। कैलासपर्वत जहाँ ब्रह्मा जी ने अपने मन से मानसरोवर की सृष्टि कर भगवान शिव पर कमल के पुष्प चढ़ाने के लिये बनाया था; यह स्थान पहले ब्रह्मदेश त्रिपिटक-वर्तमान तिब्बत में था, किन्तु दुःख है वर्तमान में यह स्थान चीन देश के अधिकार में है। इसीलिये भारतीय तीर्थयात्रियों को चीन से अनुमति बीजा लेना पड़ता है। कैलास पर्वत से ध्वनित हो रही ॐकार की ध्वनि को आज तक कोई भी पर्वतरोही, वैज्ञानिक, साधु-सन्त रहस्य को जान नहीं पाये हैं। जो जानने का प्रयत्न किये वह जिन्दा नहीं बचे।

'मन्त्रजातमशेषन्तु ईशानात्तु प्रकाशितम्' अर्थात् योगविद्या, ज्ञान-विज्ञान, सभी देवों-देवियों के मन्त्र राशि को भगवान शिव ने भगवती पार्वती को सुनाया है। समस्त चराचर की जननी जगदम्बा पार्वती ही समस्त जगत्

में इन सभी विद्याओं का प्रकाश किया है। दया, ममता, कृपामयी मां पार्वती ही शिव के अखण्डज्ञान को जानती हैं। वही चेतना, चिति के रूप में सभी जीवों और जगत में प्रसारित की हैं। अतः महान् योगी मार्कण्डेय ऋषि ने मार्कण्डेय पुराण के दुर्गासप्तशती नामक महान् स्तोत्र का उपदेश दिया है। साधक द्वारा भक्ति श्रद्धा से इस दुर्गासप्तशती नामक स्तोत्र के पाठ से जीव को चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति हो जाती है। आज इस सात्त्विक जिज्ञासा का अभाव हो जाने से सभी ओर अशान्ति, लूट, चोरी, हत्या, उग्रवाद, जातिवाद आदि कुत्सित विचार लोगों में देखा जा रहा है।

मैंने इस 'मन्त्र-विज्ञान' नामक लघुग्रन्थ में इन्हीं मन्त्रों में से कुछ मन्त्र एवं उनके रहस्य का ज्ञान कर उनका अनुष्ठान करने के लिये जिससे सबका भला हो, इस ग्रन्थ में लिखा है। यद्यपि मन्त्र-ज्ञान को गुरु द्वारा अधिकारी जिज्ञासु शिष्य को ही देने का निर्देश है, तथापि लुप्त हो रही इस विद्या का ज्ञान प्राप्त कर लोग अपना, अपने समाज तथा देश का कल्याण कर सकें, इसके लिये कई पुस्तकों जैसे 'शाक्तानन्दतरङ्गिणी', 'पुरश्चर्यार्णव' 'मन्त्रकोष', 'परमेश्वरी शारदामाता' मैहर, 'भगवती विन्ध्यवासिनी की महिमा, 'माहेश्वर सूत्रों की महिमा', दो भाग,'भगवान मृत्युञ्जय', तीन भाग, 'गोरक्षनाथपीठ एव पीठ के योगियों की महिमा', 'ब्रह्मर्षि पशुपतिनाथ योगी की महिमा', 'ब्रह्मर्षि देवरहाबाबा', 'परात्रिंशिका' ग्रन्थ की हिन्दी सुधा नामकव्याख्या, 'राधातन्त्र', 'शाक्तक्रम', 'मन्त्रकोष' आदि ग्रन्थों का व्याख्या के साथ कहीं स्वतन्त्रग्रन्थ तो कहीं प्राचीनग्रन्थों के रहस्य का ज्ञान कराने के लिये रचना किया है और आगे भी करने की इच्छा है।

'स्वल्पः कालः विघ्नाश्च बहुलाः' इस प्राचीन उक्ति के अनुसार व्यक्ति का जीवनकाल स्वल्प है। इसमें भी वार्धक्य, रोग, पारिवारिक, सामाजिक और शैक्षिक अनेक विघ्न-बाधायें हैं। सबसे बड़ी कठिनाई शुद्ध-शुद्ध ग्रन्थ का प्रकाशन, संशोधन, धन की व्यवस्था का कार्य और भी झंझटमय है। इन सभी बाधाओं को पार कर ही कुछ किया जा सकता है। अतः इसके लिये विद्वानों से क्षमा मांगने के अतिरिक्त दूसरा कोई और उपाय नहीं है। इन सभी भावनाओं को समेट कर एकमात्र परमात्मा शरण का आश्रय है।

इस मन्त्र-विज्ञान नामक ग्रन्थ को वर्तमान काल में छापने पर जोड़ कर सबके उपकार करने केलिये अपने सक्रिय सहयोग के लिये माननीय उच्च-न्यायालय, इलाहाबाद के विशिष्ट अधिवक्ता **'पं० श्रीब्रह्मदेव द्विवेदी'** के समय-समय पर आगे लोकोपयोगी ग्रन्थों को लिखने की प्रेरणा देते रहने के कारण तथा अन्य कई उपकारक कारणों से मैं उन्हें निरन्तर सफलता के सोपान पर चढ़ते जाँय, यह मेरी उनके लिये मङ्गल कामना है।

मेरी मझली वधू **श्रीमती नूतन त्रिपाठी** पर्यावरण विज्ञान का प्रस्तावना के रूप में वह बार-बार पर्यावरण की रक्षा के लिये कुछ लिखने का आग्रह करती रहती है। पर्यावरण के देवता जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु और शुद्ध निर्मल आकाश हैं। मन्त्र-विज्ञान में फलों, पुष्पों और औषधियों तथा जलवायु आदि शुद्धि के लिये मन्त्र-विमान में 'भूतिशुद्धि' का विधान है। अत: ऐसी प्रेरणा देकर इन्होंने बड़ा उपकार किया है। पौत्र **श्री व्रजेश त्रिपाठी** चिकित्सा क्षेत्र का विद्यार्थी है। शुद्धि के लिये सभी से यह आग्रह करता रहता है। अत: अत्यन्त हृद्य इन सभी के लिये मेरी मङ्गलकामना है।

हमारे ग्रन्थों का प्रकाशन **शिवसंस्कृतसंस्थान** के निदेशक **पं० श्रीओमप्रकाशमिश्र** स्वयं ही मन्त्र-विज्ञान के विद्वान्, लेखक और प्रकाशक हैं। अत: इनकी कृतज्ञता से सदा ही अभिभूत रहता हूँ। ग्रन्थ को अपने कम्प्यूटरयन्त्र से शुद्ध-शुद्ध अक्षरों का संयोजन करने में दक्ष **श्रीअरुण कुमार श्रीवास्तव** का भी मैं हृदय से अभारी हूँ। जिन ग्रन्थों परम्पराओं, गुरुओं से हमें 'मन्त्र-विज्ञान' का ज्ञान हुआ है, वह सभी हमारे परम उपकारी हैं। अत: इन सबका श्रद्धा के साथ नमन करता हूँ।

अत: यह भाव है—

गच्छन्कल्याणपथारूढः क्वचित् स्खलनं भवेत्।
तत्र दुर्जनस्वभावभरा हसन्ति लसन्ति च सज्जना ॥
एवमुत्तरप्रदेशे देवरियाजनपदान्तर्गतः।
भार्गवकोड़राख्यग्रामे लब्धजनिरन्वभवम्।
राजनाथत्रिपाठिनामाऽहमुपैमि भवं भवनीं वरम् ॥
काश्यामिहसमागत्य धन्ये सम्पूर्णानन्दनामके।
महाविद्याधिवासे हि ख्याते विश्वविद्यालये ॥

शिक्षा . दीक्षामवाप्याहमध्यनाध्यापननिर्वृतः ।
पाण्डेयपुरश्चतुष्पथान्तिके खजुरी इत्युपनामके ॥
गणपति सदनाख्ये हि रमामुमांसरस्वतीम् ।
संजपन् प्रलपन् लिखन् पठनञ्चनिरन्तरम् ॥
भगवन्तं महादेवं विश्वनाथजगद्गुरुम् ।
पितरो मातरो देवा ये चान्ये कुलदेवता ॥
प्रीतिमाप्नुवन्त्विह मन्त्रतत्त्वप्रकाशकर्मणा ।
इति युवजानीं विश्वेश्वरन्नमन् विरमाम्यहम् ॥

—(प्रो० राजनाथ त्रिपाठी)
दूरभाष : 0542-2509390
चलभाष : 7839399717

विषयानुक्रमणिका

मन्त्र-विज्ञान

जीवन की सफलता के लिये
कुछ दुर्लभ बगलामुखी मन्त्र प्रयोग

अब हम आगे कुछ अत्यन्त दुर्लभ महत्त्वपूर्ण, जीवन को सर्वथा सफल बनाने के लिये ऋषियों, मुनियों के बताये हुए सफलता के कुछ मन्त्र, कुछ स्तोत्रादि दोनों दुर्लभ हैं, किन्तु सुख-सफलता के लिये बेचैन लोगों को जानने तथा जान कर उसका उपाय करने करवाने में व्यक्ति को निश्चित ही सफलता मिली है और इन उपायों से आगे भी सफलता मिलती रहेगी। ऐसे उपायों में सर्वप्रथम दशविद्याओं में भगवती बगलामुखी का कवच, मन्त्र और स्तवन का विशेष महत्त्व है। विशेष कर प्रतिपक्षियों को परास्त करने, विवश करने और अपनी रक्षा-सुरक्षा सुनिश्चित करने में इस विद्या का बड़ा उपयोग है।

बगलामुखी का ध्यान-पूजन कर इसका प्रयोग करना चाहिये।

बगलामुखीकवच

श्रुत्वा तु बगलापूजां स्तोत्रं चापि महेश्वरः।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचं वद मे प्रभो ॥१॥

भगवान भैरव से बगलामुखीदेवी की पूजा, स्तोत्र आदि सुन कर देवर्षि नारद जी ने भगवान भैरव से देवी का कवच जानने की इच्छा प्रकट किया ॥१॥

वैरिनाशकरं दिव्यं सर्वाऽशुभविनाशनम्।
शुभदं स्मरणात्पुण्यं त्राहि मां दुःखनाशनम् ॥२॥

हे प्रभो! भगवती बगलामुखी का कवच अत्यन्त दिव्य और समस्त अशुभ, अमंगल, ताप, चिन्ता को ध्वस्त कर देने वाला है। इस कवच के स्मरण मात्र से ही सब कष्ट मिट जाता है ॥२॥

नारद जी की इच्छा जानकर जीवों की उत्पत्ति, रक्षा और रमण तथा उनके कल्याणकारी भैरव भगवान ने कहा—

श्रीभैरव उवाच

कवचं शृणु वक्ष्यामि भैरवीप्राणवल्लभम्।
पठित्वा धारयित्वा तु त्रैलोक्ये विजयी भवेत्॥३॥

हे देवर्षि नारद जी! इस कवच को पढ़ने तथा भोजपत्र अथवा कागज पर अनार अथवा अड़हुल की कलम तथा अष्टगन्ध से इसे लिखकर जो व्यक्ति दाहिनी बाहु अथवा गले में ताबीज में अथवा पीले डोरे से बाँधकर पहनेगा वह तीनों लोगों में विजय प्राप्त कर लेगा॥३॥

कवच

ॐ अस्य श्रीबगलामुखी कवचस्य नारदऋषिरनुष्टुप् छन्दः श्रीबगलामुखी देवता लं बीजं ऐं कीलकम् पुरुषार्थचतुष्टये जपे विनियोगः।

इस कवच को पढ़कर आचमनी अथवा चम्मच से जल पृथ्वी पर छोड़ दें। पुनः रक्षामन्त्र पढ़ें—

शिरो मे बगलापातु हृदयैकाक्षरी परा।
ॐ 'ह्लीं' ॐ ललाटे च बगला वैरिनाशिनी॥४॥

माता बगलामुखी मेरे हृदय की रक्षा जो 'ह्लीं' इस एक अक्षर में समायी हुई हैं, मां उस 'ह्लीं' से मेरी रक्षा करें॥४॥

गदाहस्ता सदा पातु मुखं मे मोक्षदायिनी।
वैरिजिह्वान्धरा पातु कण्ठं मे बगलामुखी॥५॥
उदरं नाभिदेशञ्च पातु नित्यं परात्परा।
परात्परतरापातु मम गुह्यं सुरेश्वरी॥६॥

हाथ में गदा उठायी हुई मां बगला हमारी चारों ओर से रक्षा करें। मेरे सुख की रक्षा सब तत्त्वज्ञों को मुक्ति देने वाली यही माता जिनका दूसरा नाम मोक्षदायिनी है, वह करें। हमारे वैरी (शत्रु) की जीभ खींचकर उखाड़ देने वाली जिह्वाधरा देवी रक्षा करें। मेरे कण्ठ की रक्षा स्वयं बगलामुखी करें। उदर-पेट, नाभि आदि स्थानों की रक्षा परात्परा बगला देवी नित्य ही करें। मेरे गुप्त अङ्गों की रक्षा पर से पर माता पार्वती तथा गुह्यकेश्वरी (गुह्जा) महाकालिका करें॥५-६॥

हस्तौ चैव तथा पादौ पार्वती परिपातु मे।
विवादे विषमे घोरे संग्रामे रिपुसङ्कटे ॥७॥

मेरे दोनों हाथों की रक्षा शत्रुओं से वाद-विवाद में, भयङ्कर स्थिति के उत्पन्न होने पर, युद्ध तथा शत्रु द्वारा सङ्कट खड़ा कर देने पर भगवती पार्वती जी करें ॥७॥

पीताम्बरधरा पातु सर्वाङ्गे शिवनर्तकी।
श्रीविद्यासमया पातु मातङ्गी पूरिता शिवा ॥८॥

मेरे सभी अंगों की सुरक्षा भगवती पीताम्बरा करें। शिव के सामने नृत्य करनेवाली शिवनर्तकी, श्रीविद्या, समया (दक्षिणकालिका), मातङ्गी (मतङ्गमुनि द्वारापूजित), पूरिता और शिवा देवियाँ चारों ओर से मेरी रक्षा करें ॥८॥

पातु पुत्रं सुतां चैव कलत्रं कालिका मम।
पातु नित्यं भ्रातरं मे पितरं शूलिनी सदा ॥९॥

मेरे पुत्र-पुत्री और स्त्री का परिपालन माता कालिका करें। मेरे भाइयों और माता-पिता के साथ सबकी रक्षा माता त्रिशूलधारिणी करें ॥९॥

रंध्रेहि बगला देव्याः कवचं मन्मुखोदितम्।
नैवदेयममुख्याय सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥१०॥

इस प्रकार हे नारद जी ! मेरे (भैरव) द्वारा कहे गये बगलामुखी के इस कवच को जैसे-तैसे व्यक्ति को न बताइयेगा; क्योंकि यह बगलामुखी का कवच सब प्रकार की सिद्धि देने वाला है ॥१०॥

पठनाद्धारणादस्य पूजनाद् वाञ्छितं लभेत्।
इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेद्बगलामुखीम् ॥११॥
पिबन्ति शोणितं तस्य योगिन्यः प्राप्यसादराः।
वश्ये चाकर्षणे चैव मारणे मोहने तथा ॥१२॥
महाभये विपत्तौ च पठेद् वा पाठयेत्तु यः।
तस्य सर्वार्थासिद्धिः स्याद् भक्तियुक्तस्य पार्वती ॥१३॥

इस कवच को नित्य पढ़ने अथवा यन्त्र में धारण करने अथवा यन्त्र बनवाकर पूजन करने से मनुष्य को इच्छित फल की प्राप्ति होती है। जो कोई व्यक्ति विना गुरु के उपदेश के इस कवच को विना जाने या पाठ किये

माता बगलामुखी का जप करता अथवा करवाता है, तब ऐसा करने, कराने वाले व्यक्ति का देवी की योगिनियाँ खून चूस लेती हैं। सभी प्रकार की जानकारी कर, जो भक्त माता बगलामुखी का आगे लिखा जाने वाला बत्तीस अक्षर मन्त्र का जप करता है वह आकर्षण (बुलाने), मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, स्तम्भन इन छः प्रकार के लौकिक कार्य को सिद्ध कर अपने शत्रुओं को विनष्ट कर देता है। जब प्राण का सङ्कट, कोई भारी भय की तथा कोई विपत्ति आने की सम्भावना हो तब इस देवी का अनुष्ठान करना-कराना चाहिये। ऐसा प्रयोग सफल होने पर सभी बाधायें दूर हो जाती हैं तथा साधक के सभी प्रकार से कार्य की सिद्धि हो जाती है।

शास्त्र का यह नियम है कि किसी भी विशेष अनुष्ठान को करने अथवा करवाने के पहले देवता का स्वभाव, गुण, धर्म, फलप्राप्ति का विचार भलीभाँति कर लेना चाहिये। विना जाने प्रयोग करने पर भारी संकट आ सकता है। शास्त्र में यह भी निर्देश है कि 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' अर्थात् जिस देवी-देवता का अनुष्ठान करना हो उस विश्वमय देवी-देवता का अपने शरीर में न्यास स्थापन करें। ऐसा करने पर साधक देवी-देवता का ही स्वरूप हो जाता है। इसीलिये अनुष्ठेय शक्ति के समाराधन का सङ्कल्प, शरीर-आसन आदि की शुद्धि, शुद्ध अथवा पवित्र जल से आचमन आदि कर लेना चाहिये। इससे शरीर की बाहरी शुद्धि के साथ पञ्चभूतों, पाञ्चभौतिक पदार्थ पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि की शुद्धि हो जाती है तथा देवता यजमान द्वारा अर्पित पुष्पादि को प्रसन्नता पूर्वक गन्ध के रूप में ग्रहण कर लेते हैं। अतः ध्यान, आवाहन, विनियोग, अङ्गन्यासादि कर पूजन कर मन्त्र जप करना चाहिये। यह बगलामुखी मां सर्वेश्वरी हैं। भगवान् भैरव की प्रमुख भैरवी तथा ब्रह्मा-विष्णु आदि देवों की जननी, समस्त जगत् का पालन, पोषण, संहार करने वाली हैं। माता दुर्गा का ही दूसरा रूप माता बगलामुखी क्रोधिनी देवी हैं। जब प्रसन्न हो जाती हैं तब समस्त विपत्तियों, दुर्गम-समस्याओं को तत्काल मिटा देती हैं। अतः सभी विधि भलीभाँति जानकर ही इनका प्रयोग करना चाहिये। माँ भुवनेश्वरी की दश महाविद्याओं में माता बगलामुखी प्रमुख हैं। इसीलिये यह विद्या लुप्त न हो इसलिए इस ग्रन्थ के द्वारा इस महाशक्ति (ब्रह्मास्त्र) का ज्ञान कराया जा रहा है। आगे विनियोग अर्थात् चम्मच में ताँबा-चाँदी-स्वर्ण किसी धातु का हो, इसे पृथ्वी

पर जल विनियोग पढ़कर छोड़ दें। विनियोग एक प्रकार का भाव है, जिससे इष्ट चाहने वाला साधक इस जल के माध्यम अपने क्रियमाण कार्य को देवी के आगे व्यक्त करता है। वह यह है—

श्रीगणेशाय नमः

'ॐ अस्य श्रीबगलामुखीस्तोत्रमन्त्रस्य भगवान नारदऋषिः बगलामुखीदेवता मम सन्निहितानां दुष्टानां विरोधिनां वाङ्मुखपदजिह्वाबुद्धीनां स्तम्भनार्थे श्रीबगलामुखीवरप्रसाद सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।' इति।

इस प्रकार जल छोड़कर अङ्गन्यास (स्पर्श) करें। दोनों हाथों के अंगूठों का स्पर्श—**ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः**। पुनः दोनों तर्जनियों का स्पर्श करें—**ॐ ह्लीं बगलामुखी तर्जनीभ्या नमः**। पुनः दोनों मध्यमा अङ्गुलियों का—**ॐ ह्लीं सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां वषट्**। पुनः दोनों अनामि-काओं का—**ॐ ह्लीं वाचं मुखं पदं स्तम्भय अनामिकाभ्यां नमः**। पुनः दोनों कनिष्ठिकाओं का—**ॐ ह्लीं जिह्वां कीलय कीलय कनिष्ठिकाभ्यां नमः**। पुनः दोनों हथेलियों को ऊपर-नीचे कर स्पर्श कर कहें—**ॐ ह्लीं स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः**। इसी प्रकार हृदयादि स्थानों का स्पर्श कर माता का आवाहन करें—**ॐ ह्लीं हृदयाय नमः**। **ॐ ह्लीं बगलामुखी शिरसे स्वाहा**—शिरका, पुनः शिखा स्थान ब्रह्मरन्ध्र का स्पर्श—**ॐ ह्लीं वाचं मुखं पदं स्तम्भय शिखायै वषट्**। पुनः दोनों नेत्रों का स्पर्श—**ॐ ह्लीं जिह्वां कीलय कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्**। पुनः मन्त्र पढ़कर शरीर के चारों ओर तेज चिटुकी बजा कर विघ्नों को भगायें—**ॐ ह्लीं बुद्धिं नाशय ह्लीं स्वाहा**। इस प्रकार अङ्गन्यास कर माता का ध्यान करें।

ध्यान का मन्त्र

ॐ सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीम्,
हेमाभांगरुचिं शशाशङ्कमुकुटां सक्चम्पकस्त्रग्युताम्।
हस्तैर्मुदगरपाशबद्धरसनां संविभ्रतीं भूषणैः,
व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तभिनीं चिन्तये ॥१॥

अर्थ—जो भगवती बगलामुखी ऊँचे रत्नजटित सुवर्ण के सिंहासन पर विराजमान हैं, जिनके दो नेत्रों से पृथक् एक नेत्र ललाट पर भी है, अतः वह

त्रिनयना भी हैं। जिनके सुवर्ण के समान दप-दप दीपित तप्त सोने जैसी शरीर पर रेशमी दमकती हुई साड़ी लहरा रही है, जिनके शिर के उज्वल मुकुट से पूर्णमासी के चन्द्रिका की भाँति शीतल कान्ति चमक रही है, जो उत्कृष्ट मधुर पके हुये पीले-पीले चम्पा की बड़ी माला (गजरा) धारण की हुई हैं। दाहिने हाथ में विशाल गदा और बायें हाथ में भारी जाल लेकर वैरियों (शत्रुओं) की जीभ खींच कर उसे चुप कर दे रही हैं। ऐसी शोभा-प्रभा-कान्तिवाली माता बगलामुखी इस जगत् में चारों ओर व्याप्त हैं, अङ्गों में दप-दप करते स्वर्ण के आभूषण शोभित हो रहे हैं। ऐसी माता बगलामुखी जो तीनों लोकों एवं उनके जीवों का जो अपने वश में रखती हैं। ऐसी जगदम्बा बगलामुखी मां का मैं ध्यान कर रहा हूँ॥१॥

इस प्रकार माता का ध्यान कर सभी को वश में कर लेने वाले इस मन्त्र का ११, २१, १०८ अथवा जैसा कार्य हो उसके अनुसार जप करें, करायें। आप देखेंगे कि जप के साथ ही शत्रु का निग्रह होने लगता है। यथेच्छ जप कर आगे के स्तुति मन्त्रों का पाठ करें। इस जप-पाठ से साधक का सभी मनोरथ पूर्ण होकर वह सर्वथा निर्भय होकर सुखपूर्वक अथवा हंसी-खुशी से शेष जीवन जीयेगा।

मन्त्र—ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं नाशय ह्लीं स्वाहा ॐ ।। प्रणव ॐकार को छोड़कर स्वाहा भी एक अक्षर माना गया है। इस प्रकार बत्तीस अक्षर का यह गुप्त मन्त्र भक्तों के कल्याण के लिये भगवान शिव ने **'रुद्रयामलतन्त्र'** नामक तन्त्रग्रन्थ में भगवती से कहा है। यह दुर्लभ विद्या है। अत: यह लुप्त न हो जाय और कोई अनुष्ठाता त्रुटि न कर दे; इसलिये गुरुप्रदत्त इस मन्त्र को विधि और व्याख्या के साथ यहाँ प्रसङ्गवश लिखा जा रहा है।

जप कर स्तोत्रों का पाठ अवश्य करें। अर्थ सहित यह अप्राप्य स्तोत्र लिख रहा हूँ।

ॐ मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपमध्यवेदी,
सिंहासनोपरिगतांपरिपीतवर्णाम्
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीम्,
देविं भजामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥१॥

व्याख्या—अमृत के समुद्र के बीच एक मणियों का द्वीप है। उस द्वीप के बीचोंबीच रत्नों से जटित एक सुन्दर सिंहासन है। उस दिव्य सिंहासन पर नाना प्रकार के चित्र-विचित्र आभूषणों को पहिनी हुई तथा पीली किनारी का पीली रेशमी साड़ी एड़ी तक ढँकी हुई, पीली-पीली सुन्दर पुष्पमालाओं से सुसज्जित, हाथ में सुवर्ण की बड़ी गदा तथा सुवर्ण की डोरी की बनी हुई भयानक जाल हाथ में लेकर शत्रु को जाल में बाँधकर, उसकी जीभ खींचकर मानो उखाड़ देंगी, ऐसी विलक्षण सुन्दर सर्वविधि सुसज्जित माता बगलामुखी के अकारण-करुणा-वरुणालय शरण में मैं आया हुआ हूँ ॥१॥

ॐ जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां भजामि ॥२॥

व्याख्या—शत्रुओं की जीभ बायें हाथ से खींचकर प्राणान्तक पीड़ा दे रहीं भगवती बगलामुखी तथा दाहिने हाथ में भयानक गदा के प्रहार से शत्रुओं का विध्वंस करती हुई, पीले फल खाती हुई, पीले पुष्पों की माला तथा पीली साड़ी धारण की हुई, दो भुजाओं वाली माहेश्वरी भवानी बगलामुखी की शरण में आकर दुःख से डरा हुआ मैं मां की स्तुतिं करता हूँ ॥२॥

ॐ चलकनककुण्डलल्लोल्लसितचारुगण्डस्थलीं,
लसत् कनक चम्पक द्युतिमदिन्दुबिम्बाननाम्।
गदाहतविपक्षकां कलितलोलजिह्वाञ्चलाम्,
स्मरामि बगलामुखीं विमुखवाङ्मनस्तम्भिनीम् ॥३॥

व्याख्या—माता बगलामुखी के दोनों कानों में सोने के बड़े-बड़े कुण्डल कानों के नीचे गालों पर इधर-उधर डोल रहे हैं, जिससे मुख की शोभा और भी बढ़ गई है। माता का सुग्गा के समान सुन्दर नाक चम्पा की पुष्प के समान गम-गम महकता मुखमण्डल, गदा से विपक्षी शत्रुओं को मार रहीं, उनकी जिह्वा खींचकर उन्हें कांव-कांव करा रही हैं। ऐसी माता बगलामुखी जो विपक्ष में खड़े हैं, उनका मुख भञ्जन कर चुप करा देने वाली मां का मैं स्मरण कर रहा हूँ ॥३॥

पीयूषोदधिमध्य चारुविलसद्रक्तोल्पले मण्डपे,
सत्सिंहासनमौलिपातितरिपुं प्रेतासनाध्यासिनीम्।
स्वर्णाभांकरपीडितारिरसनां भ्राम्यद्गदां विभ्रमाम्,
इत्थं ध्यायति यान्ति तस्य विलयं सद्योऽथसर्वापदः ॥४॥

व्याख्या—पियूष अर्थात् अमृत की उदधि अर्थात् समुद्र के मध्ये अर्थात् बीच में चारु-सुन्दर विलसत्-सुशोभित रक्तोत्पले-लालकमल के मण्डप के महल के बीच में सुन्दर सुवर्ण के सिंहासन के ऊपर बैठी हुई, सुवर्ण के समान ही दोनों अपने हाथों से शत्रु की रसना रस को ग्रहण करने वाली जीभ को उखाड़ती हुई तथा उन्हें (शत्रु के) प्रेत के ऊपर पटक कर खड़ी होकर सुवर्ण के समान अपने दोनों हाथों से जीभ को खींच कर बड़ी सुवर्ण की गदा को शत्रु के चारों ओर घूमाती हुई शोभाको प्राप्त हो रहीं माँ बगलामुखी का इस प्रकार जो ध्यान कर जप एवं स्तोत्र का पाठ करता है, उस भक्त साधक की सभी विपत्तियाँ तत्काल ही नष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार ऊपर लिखे मन्त्र का जप करते हुये तथा इन लिखित स्तोत्रों का ध्यान से पढ़ते हुये भक्त का शत्रुओं द्वारा रचित सभी जाल कुटिल कुचक्र सर्वथा सर्वदा के लिये ध्वस्त हो जाते हैं ॥४॥

देवित्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते यः पीतपुष्पाञ्जलीम्,
भक्त्या वामकरे निधाय च पुनर्मन्त्रं मनोज्ञाक्षरम्।
पीठध्यानपरोऽथकुम्भकवशाद्बीजं स्मरेत्पार्थिवं,
तस्यामित्रमुखस्य वाचि हृदये जाड्यं भवेत् तत्क्षणात् ॥५॥

व्याख्या—हे मातः बगलामुखी ! तुम्हारे लालकमल पुष्प के समान सुन्दर और कोमल चरणों में जो भक्त तुम्हारी पूजा, कवच का पाठ तथा उपर्युक्त बत्तीस अक्षरों के तुम्हारे मन्त्र का यथेष्ट जप कर अथवा करा कर इन स्तोत्रों से पीले पुष्पों को भक्तिपूर्वक बायें हाथ में लेकर दाहिने हाथ का अञ्जली में पीले फूलों को भर कर बीज (मुख्यमन्त्र) का जप तथा इन स्तोत्रों का ध्यान तथा उसके अर्थ के साथ चिन्तन करता हुआ साधक तुम्हारी वेदी पर रखी हुई प्राणप्रतिष्ठित मूर्ति पर अञ्जलियों का पुष्प समर्पित करता हुआ कुम्भक मुद्रा से (कुम्भक मुद्रा दोनों हाथों की अर्धविकसित अञ्जलि जिसमें पीले पुष्प भरे हों को कहते हैं) पुष्पों को समर्पित करता हुआ जप-स्तोत्र का

पाठ करता है, उसकी शत्रुओं द्वारा जितनी भी कुटिल योजनायें होती हैं, वह सभी देखते-देखते हीं ध्वस्त हो जातीं हैं। इसका यही तात्पर्य है कि शत्रु सभी प्रकार से परास्त हो दीन-हीन हो जाता है ॥५॥

वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति,
क्रोधी शाम्यति दुर्ज्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वद्यन्त्रणायान्त्रितः,
श्रीनित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नमः ॥६॥

व्याख्या—हे मातः! तुम्हारी कृपा कटाक्ष से भक्त का विरोधी जो बलवान्, धनवान् और नाना प्रकार के दुष्टों को साथ लेकर भक्त की हत्या, पराजय, सब प्रकार से त्रस्त करने का जो भी कुचक्र रचता, कुटिल योजना बनाता है वह जितना भी अपने दम्भ गुण्डई, घमण्ड आदि से तुम्हारे भक्त को नष्ट कर देने का कुटिल चाल चलता है वह वादीशत्रु की बुद्धि को खींचकर, कुण्ठित, मति भ्रमित कर उसे राजा से रंक (भिखारी) बना देती हैं। इतना ही नहीं तुम्हारे भक्त सभी प्रकार से आतंकित-पीडित आदि दुष्चक्र करने की जो भी कुछ गुप्त या प्रकट उपाय करता है, उसकी लगाई हुई दुष्चक्र की आग बुझ जाती है, अत्यन्त क्रोध करने वाला खूंखार शत्रु परास्त हो शान्त हो जाता है, दुर्जन का मन बदल कर सज्जन तथा बड़े-बड़े सहयोगियों द्वारा सभी कुटिल गिरोह सर्वथा विवश और परास्त होकर दीन-हीन हो जाता है। घमण्डी का घमण्ड चूर-चूर हो जाता है तथा सभी प्रकार का सफल उपाय से विजयी बनने की इच्छा रखने वाले शत्रु, सभी ज्ञान-विज्ञान-युक्त तुम्हारी भक्ति आपकी यन्त्रणा अर्थात् कृपा की स्नेह की अमृत वर्षा से तुम भक्त को धन्य-धन्य बना देती हो। अतः हे कल्याणी मां भक्त का सब प्रकार से मङ्गल-कल्याण करने वाली बगलामुखी मां मेरा तुम्हें सतशः प्रणाम है। मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ ॥६॥

मन्त्रस्यात्मबलं विपक्षदलने स्तोत्रं पवित्रं च ते,
तन्त्रं वादिनि यन्त्रणं त्रिजगतां जैत्रं च चित्रं च ते।
मातः श्रीबगलेतिनाम ललितं यस्यास्ति यन्तोर्मुखे,
त्वन्नामग्रहणेन संसदि मुखस्तम्भो भवेद् वादिनाम् ॥७॥

व्याख्या—हे मातः ! बगलामुखि! तुम्हारा बत्तीस अक्षर का मन्त्र ध्यान से शुद्ध होकर जो जप करेगा उसका गिरा हुआ आत्मबल जग जायेगा, यह मन्त्र विपक्षी का सर्वथा दलन कर उसे दीन-हीन बना देगा। तुम्हारा यह पवित्र स्तोत्र जो भक्तिभाव से पढ़ेगा उसके शत्रु चारों ओर बँध जायेंगे, चारों ओर से उन्हें भय होने लगेगा। यह इन तीनों लोकों में व्याप्त महादेवी का मन्त्र एवं स्तोत्र अत्यन्त विजयी बनाने वाला सभी उपाय से भिन्न सर्वथा विचित्र है। वस्तुतः जिसके मुख में केवल 'बगला'-'बगला' यह नाम ही रहता है वह मुकदमों की बहस, सभा, संसद, विधानपरिषद्, वाद-विवाद में निश्चय ही विजयी होता है और उसके विपक्षी शत्रु मूक होकर देखते रह जाते हैं ॥७॥

दुष्टस्तम्भनमुग्रविघ्नशमनं दारिद्र्यविद्रावणम्,
भूभृद्भिःशमनं चलन्मृगदशां चेतः समाकर्षणम्।
सौभाग्यैकनिकेतनं यमदृशः कारुण्यपूर्णामृतम्,
मृत्योर्मारणमाविरस्तु पुरतो मातस्त्वदीयं वपुः ॥८॥

व्याख्या—हे जननी ! तुम्हारा कवच, मन्त्र और स्तोत्रों का जो कोई भी पाठ तथा जप निष्ठापूर्वक करता है उससे उस व्यक्ति के प्रति द्वेषभाव रखने वाले व्यक्ति की गति स्तम्भित (नियन्त्रित) होकर नाना प्रकार के मारने से लेकर बदनाम करने तक तक प्रतिपक्षियों की कुटिलता सर्वथा निर्मूल हो जाती है और वह स्वयं अनेक प्रकार की विपत्तियों में फँस जाता है। यहाँ राजा का क्रोध भी ठंडा होकर व्यक्ति राजा का प्रियपात्र हो जाता है। मृगों, सिंह, बाघ आदि की दौड़ने की शक्ति क्षीण हो जाती है। इसका तात्पर्य है कि नित्यप्रति नये-नये कुचक्र रचने वाले परास्त हो जाते हैं। शत्रु का चित्त (मन) बदल जाता है और वह नम्र हो जाता है। व्यक्ति सभी समस्याओं को पार कर सौभाग्य का भण्डार बन जाता है, यमराज की मारने की दृष्टि भी फिर जाती है, वह जीव पर करुणा कर स्नेह की वर्षा करने लगते हैं। अतः तुम काल को भी मारने वाली महाकालीस्वरूप हो, इसलिये हे मां ! अपनी झलक मुझे दिखा दो ॥८॥

मातर्भञ्जय मे विपक्षवदनं जिह्वां च संकीलय,
ब्राह्मीं मुद्रय नाशयाशुधिषणामुग्रां गतिं स्तम्भय।

शत्रूँश्चूर्णय देवि तीक्ष्णगदया गौरांगि पीताम्बरे,
विघ्नौघं बगले हर प्रणमतां कारुण्यपूर्णेक्षणे ॥९॥

व्याख्या—हे मातः ! मेरे प्रतिपक्षियों का मुख तोड़ दें, उनकी जिह्वा-जीभ उखाड़ दें, उनकी भवगती सरस्वती जी की कृपा से मिली भाषण के कला की शक्ति को कुण्ठित कर दें, उनकी प्रतिभा को तत्काल नष्ट कर दें, उग्र-क्रूर-दृष्टि तथा गतिविधियों को रोक दें, अपनी कंटिली गदा से शत्रुओं को चूर-चूर कर दें। हे अत्यन्त गोरी सुन्दर मां, हे पीताम्बरा पीली रेशमी साड़ी पहनी जननी मुझ दुःखी पर दया-करुणा कर दया और पुत्र स्नेह से देखकर समस्त विघ्न-बाधाओं को दूर कर दें ॥९॥

मातर्भैरवि भद्रकालि विजये वाराहिविश्वाश्रये,
श्रीविद्ये समये महेशि बगले कामाक्षि वामे रमे।
मातङ्गि त्रिपुरे परात्परे स्वर्गापवर्गाप्रदे,
दासोऽहं शरणागतः करुणया विश्वेश्वरि पाहि माम् ॥१०॥

व्याख्या—इस स्तोत्र में भगवान भैरव देवर्षि नारद जी से माता पीताम्बरा के विभिन्न नामों से स्तुति करते हुये भक्त के लिये शरणागति माँग रहे हैं। हे मातः ! हे भैरवी ! हे भद्रकाली ! हे विजयदिलानेवाली विजये ! हे वाराही देवि ! हे संसार के जीवों को एकमात्र शरण देने वाली, हे श्रीविद्या सभी श्री लक्ष्मी और सभी विद्याओं, कलाओं को देने वाली श्रीविद्ये ! हे समये-दक्षिणाकालिके ! दक्षिणा काली कलियुग के लिये सभी के लिये उपासना करने लायक हैं। इसीलिये गाँव-गाँव, नगर, कस्बा हर जगह काली जी की पिण्डी अथवा नीम्ब वृक्ष में माता दक्षिणाकाली (नवदुर्गा) की उपासना की जाती है। हे महेश भगवान शिव की अर्धाङ्गिनी पार्वती, हे प्रतिपक्षी की विवेक, बुद्धि, वाणी को बन्द कर देने वाली माँ बगले ! हे कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामक्षी देवी तमिलनाडु प्रान्त के काञ्चीपुरम् तथा असम प्रान्त की कामाख्या देवी, हे वाममार्ग की उपासना करने वाली खप्पर वाली महाकाली ! हे विष्णुप्रिये महालक्ष्मी ! रमे ! हे सेवरी के गुरु मतङ्ग ऋषि द्वारा सिद्ध देवी मातङ्गी ! हे त्रिपुरासुर का नाश करने वाले भगवान त्रिपुरारी (शिव) की तीनों लोकों में स्वच्छन्द विचरण करने वाली त्रिपुरे ! हे सबके ऊपर रहने वाली पराशक्ति से भी ऊपर परात्परे ! हे स्वर्ग

तथा अपवर्ग अर्थात् लोक और परलोक में भी सभी भोग और अन्त में मोक्ष देने वाली मां स्वर्गापवर्गे दे! हे मातः! सभी भक्तों की सभी प्रकार की कामनायें पूर्ण कर देने वाली बगलामुखी मां हम तुम्हारी शरण में आये हैं। अतः हे करुणा-ममता-दयामयी मां मुझे अपने शरण में लेकर मेरी सब प्रकार से रक्षा करें ॥१०॥

संरम्भे चौरसंघे प्रहरणसमये बंधने वारिमध्ये,
विद्यावादे विवादे प्रकुपितनृपतौ दिव्यकाले निशायाम्।
वश्ये वा स्तम्भने वा रिपुवधसमये निर्जने वा वने वा,
गच्छंतिष्ठँस्त्रिकाले यदि पठति शिवं प्राप्नुयादाशुधीरः ॥११॥

व्याख्या—जब व्यक्ति चारों ओर से विघ्नों से घिर जाय, चोर चारों ओर से घेर लें, मारपीट होने लगे, शासन की ओर से गिरफ्तार हो जाय, जल में नौका अथवा सहारा डूबने लगे, परस्पर विद्या का विवाद-शास्त्रार्थ होने लगे, आपसी कटुता तथा प्रतिद्वन्द्विता हो जाय, चारों ओर से शत्रु से घिर जाय, राजा या अधिकारी अत्यन्त क्रोधित हो जाय, तब महानिशा के दिव्य समय में (दिव्यकालरात्रि का समय दश बजे से प्रातः चार बजे तक कुल छः घण्टे का होता है। यही सबसे उत्तम काल देवी आराधना के लिये शास्त्रों में बताया गया है), वश में करने, रोकने, शत्रु के वध के लिये मारणविद्या का प्रयोग करने, निर्जन-एकान्त स्थान पर सिंह या हिंसक जीव, चोर, गुण्डे, शत्रुओं आदि से घिर जाने, चलते हुये, बैठे हुये तथा किसी भी समय सङ्कट में इस स्तोत्र का पाठ करता रहे तो व्यक्ति की चारों ओर से असीम महिमावाली बगलामुखी मां रक्षा करती रहती हैं ॥११॥

नित्यं स्तोत्रमिदं पवित्रमिह यो देव्याः पठन्ति आदरात्,
धृत्वा यन्त्रमिदं तथैव समरे बाहौ करे वा गले।
राजानोऽप्यस्यो मदान्धकरिणः सर्पामृगेन्द्रादिका,
स्ते वै यान्ति विमोहिता रिपुगणा लक्ष्मीः स्थिराः सिद्धयः ॥१२॥

व्याख्या—जो कोई व्यक्ति इन उल्लिखित स्तोत्रों का नित्य पाठ करता या पण्डित से करवाता है तथा देवी के 'बत्तीस अक्षरमन्त्र' को यन्त्र में बन्द कर दाहिनी बाहु अथवा पहुँचा हाथ में, अथवा गले में धारण किये रहता है, तब उसे कहीं से किसी प्रकार का भय से जैसे राजा की ओर से, शत्रुओं,

पागल हाथी, फन उठाया विषधर साँप, मारने के लिये दौड़ता सामने आता सिंह अथवा ऐसा कोई प्राणघातक भय वह सभी मोहित होकर ठमक कर भाग जाता है। गरीब-से-गरीब के घर लक्ष्मी का अखण्ड वास हो जाता है ॥१२॥

त्वं विद्या परमा त्रिलोकजननी विघ्नौघसंच्छेदिनी,
कोषाकर्षणकारिणि त्रिजगतामानन्दसंवर्द्धिनी।
दुष्टोच्चारनकारिणी जनमनः सम्मोहसन्दायिनी,
जिह्वां कीलय भैरवी विजयते ब्रह्मादिमन्त्रो यथा ॥१३॥

व्याख्या—हे मातः ! तुम ही समस्त दश प्रकार की विद्याओं (देवियों) में सर्वोत्तम विद्या हो, तुम ही त्रिलोक की जननी हो अर्थात् तीनों लोकों के जीव तुम्हीं से उत्पन्न हैं। तुम सभी प्रकार के विपत्ति को तत्काल मिटा देने वाली हो। हे जननी ! तुम समस्त कोष—यह कोष पाँच प्रकार के होते हैं। १.अन्नमयकोष, २. प्राणमयकोष, ३. मनोमयकोष, ४. विज्ञानमयकोष, ५. आनन्दमयकोष। यह पाँचों शरीर के भीतर रहने वाले एक तरह से शणीर, प्राण, मन, विज्ञान-बुद्धि, आनन्द आत्मा जो स्वयं प्रकाशमान है। इसी आत्मा को भगवद्गीता में अर्जुन से भगवान श्रीकृष्ण ने दूसरे अध्याय में गीता में अजर-अमर, नित्य, अविनाशी, पुरानी शरीर को छोड़कर पुनः नई शरीर बदल लेने वाला कहा है। जैसे—

वासांसि निर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि सञ्चाति नवानि देही ।।

—(भगवद्गीता, २/२२)

हे अर्जुन ! जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को धारण कर लेता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने-वृद्ध, रोगी, आयु की अधिकता तथा बिमारियों के कारण मृत शरीर को छोड़कर दूसरे नये शरीर में (माता के पेट में बालक के रूप में दूसरे शरीर को ग्रहण) कर लेता है। यही भगवान् श्रीकृष्ण का सनातन हिन्दूधर्म के लिये वैज्ञानिक उपदेश है। इस्लाम, ईसाई आदि धर्मों में पुनर्जन्म नहीं माना जाता, किन्तु सनातन हिन्दूधर्म में पुनर्जन्म स्वीकार है। इसीलिये भारतवर्ष में हिन्दू के शव का दाह होता है किन्तु अन्य धर्मों में शव को जमीन में गाड़ा जाता है। यह

वैज्ञानिक सत्य है कि सब के देह में देही के रूप में नित्य, शुद्ध, बुद्ध, चैतन्य, आनन्द स्वरूप आत्मा का निवास है। इसीलिये शरीर के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता। यह अज (बुढ़ौती रहित) और अमर तथा नित्य है।

यही यहाँ स्तोत्र में कोष (खजाना) के रूप में वर्णित है। माता बगलामुखी सब उपासकों को निरन्तर आनन्दित करती हैं। यह समस्त वैरियों का उच्चाटन कर भगा देती हैं। अपने भक्त के मन को आनन्दित करती हुई शत्रुओं को सम्मोहित कर-कर भक्त के पैरों पर गिर जाने के लिये विवश कर देती हैं। इस प्रकार शत्रु की जीभ को कीलित कर अर्थात् जुबान बन्द कर हे मातः ! तुम उसी प्रकार विजयी हो रही हो जैसे ज्ञानवान् धनुर्धर ब्रह्मास्त्र की महिमा को जानता है ॥१३॥

विद्या लक्ष्मीः सर्वसौभाग्यमायुः पौत्रैः पुत्रैः सर्वसाम्राज्यसिद्धि।
मानं भोगो वश्यमारोग्यसौख्यं प्राप्यते तत्तद् भूतलेऽस्मिन्नरेण ॥१४॥

व्याख्या—सभी प्रकार की विद्याओं का ज्ञान, अनन्त धन सम्पत्ति, सभी ओर से सौभाग्य-स्त्री-पुरुष दोनों को, आयु, पुत्र-पौत्रों का सुख, तथा सभी ओर यश-कीर्ति का विस्तार, सभी ओर से सम्मान, विविध भोगविलास, सबको अपने वश में कर लेने की शक्ति, सभी प्रकार से निरोगित, सभी प्रकार का सुख माता के स्तोत्रों के पाठ से मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥१४॥

यत्कृतं जपसन्नाहं गदितं परमेश्वरि।
दुष्टानां निग्रहार्थाय तद्गृहाण नमोऽस्तु ते ॥१५॥

व्याख्या—भगवान् भैरव कहते हैं कि हे नारद जी ! भक्त साधक जो इस कवच का पाठ, विनियोग, ध्यान, मन्त्रजप और इन स्तोत्रों का नित्य पाठ करता है उसे माता बगलामुखी अवश्य ग्रहण करती हैं। अतः आप इस विद्या को मुझ से ग्रहण कर लोगों के कल्याण के लिये सबको बता दीजिये ॥१५॥

ब्रह्मास्त्रमितिविख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
गुरुभक्ताय दातव्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥१६॥

व्याख्या—हे देवर्षि नारद जी! यह बगलामुखी का प्रयोग ब्रह्मास्त्र के नाम से आप से हमने कहा है, यह तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। अतः इस असाधारण विद्या के ज्ञान को केवल जो गुरु का अनन्य और विश्वासपात्र भक्त हो, उसी को इस विद्या का दान आप जैसे गुरु को करना चाहिये, न कि जिस किसी अश्रालु और धर्म-कर्महीन किसी व्यक्ति को देना चाहिये। यह अत्यन्त गुप्तविद्या है। मैं दया कर आपको अधिकारी जान कर दिया है। भलीभाँति जान कर ही इस विद्या को दूसरे को देनी चाहिये ॥१६॥

पीताम्बरां च द्विभुजां त्रिनेत्रां गात्रकोज्ज्वलाम्।
शिलामुद्गरहस्तां च स्मरेत्तां बगलामुखीम् ॥१७॥

व्याख्या—माता बगलामुखी पीताम्बरा अर्थात् पीली साड़ी पहनीं रहतीं हैं, दो भुजायें हैं, उनके तीन नेत्र हैं, शरीर एकदम गोरी है, जिससे चन्द्रमा की कान्ति के समान उनकी शरीर झलकती रहती है। एक हाथ में भारी पर्वतखण्ड और दूसरे हाथ में भारी नुकीली गदा लिये शत्रुओं के संहार के लिये तैयार रहती हैं। अतः ऐसी दया, करुणा, ममतामयी माँ बगलामुखी की शरण में मैं आया हूँ ॥१७॥

यह गुप्तविद्या के प्रकाश को उचित पात्र समझ कर मैंने ग्रन्थ रूप में इस गुप्त और प्राचीन विद्या का उल्लेख किया है। आशा है नियम और विधानपूर्वक इसका आचरण कर लोग सुखी होंगे। इस प्रकार भगवान् रुद्र द्वारा 'रुद्रयामलतन्त्र' में उपदिष्ट इस विद्या का उपदिष्ट प्रयोग पूर्ण होता है।

●●

ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति का उपाय

रुद्रयामलतन्त्र में तीव्रबुद्धि बढ़ाने का गौरीपुत्र कुमार कार्तिकेय को प्रसन्न करने के लिये मन्त्र

पुराणों के अनुसार जब त्रिपुरासुर का अजेय पुत्र तारकासुर का उत्पात बढ़ गया। सभी इन्द्रादि देवता परास्त हो गये। विष्णु-शिव भी उसे जीत न सके। तब सभी मिलकर भगवान ब्रह्मा जी के यहाँ गये। पूछने पर ब्रह्मा जी ने बताया कि सतीदेवी के पिता दक्ष की यज्ञ में भगवान शिव के अपमान के कारण यज्ञकुण्ड में देवी सती ने अपने शरीर को भस्म कर दिया है। इससे दु:खी शिव तब से अनन्त काल तक तपोलीन हो गये हैं। इसी काल में तारकासुर उत्पन्न हुआ है। शिव की तपस्या कर देव-दानवों से अवध्य होने का वर प्राप्त कर सबको परास्त कर तीनों लोकों का राजा बन बैठा है। पुन: ब्रह्मा जी ने बताया कि हे देवो ! यदि आप लोग शिव की समाधि भङ्ग कर शिव का विवाह सती देवी का ही दूसरा अवतार पार्वती से करा दें तो पार्वती का पुत्र ही तारकासुर को मार पायेगा।

इसके आगे पार्वती का जन्म, घोर तप, भगवान शिव से विवाह हजारों वर्ष रमण के पश्चात् कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति, गंगा जी में शिव के वीर्य से उत्पन्न कुमार को पार्वती जी द्वारा फेंकना, गंगा जी द्वारा कुमार को अपने किनारे सरपत के वन में लहरों से डालना, कृतिकाओं ऋषि पत्नियों द्वारा छह मुखवाले षडानन बालक को दुग्ध पिलाना, शीघ्र दुग्धपान से बालक का हृष्ट-पुष्ट होना, सभी अस्त्र-शस्त्र-शास्त्रविद्यायें शिव से प्राप्त होना, कुमार कार्तिकेय को सेनापति बनाकर तारकासुर तथा सेना सहित तारकासुर का वध, यह सभी कथा शिवमहापुराण आदि में वर्णित है। वह भगवान शिव के ज्येष्ठ पुत्र स्कन्द शिव के समान तेजस्वी, ज्ञानी, प्रबलप्रतापी और ब्रह्मचारी हैं। दक्षिण भारत में क्रौंच पर्वत पर इनका निवास है। वहाँ भगवान गणेश जी के स्थान पर उनकी प्रथम पूजा होती है। यह बुद्धि विवर्धक और समस्त शस्त्र-अस्त्र और शास्त्रों के ज्ञाता हैं। शिव के

साथ इनकी भी पूजा सर्वत्र होती है। विभूतियों के वर्णन में भगवान कृष्ण ने गीता के दशवें अध्याय में अपने को सेनापति स्कन्द ही बताते हैं— **'सेनानीनामहं स्कन्दः'** इति।

योगीश्वरो महासेनः कार्तिकेयोऽग्निनन्दनः।
स्कन्दः कुमारः सेनानी स्वामीशङ्करसम्भवः॥१॥

मन्त्र का अर्थ—योगियों में सर्वश्रेष्ठ, महान्, सेनापति, अग्नि के अवतार, कार्तिकेय, स्कन्द, सेनानी, स्वामी और शिव को आनन्दित करने वाले आज्ञाकारी पुत्र हैं॥१॥

गाङ्गेयस्ताम्रचूडश्च ब्रह्मचारी शिखिध्वजः।
तारकारिरुमापुत्रः क्रौञ्चारिश्च षडाननः॥२॥

अर्थ—इस मन्त्र में कुमार कार्तिकेय के नाम और गुणों का निरूपण किया गया है। गाङ्गेय अर्थात् गङ्गाजी के पुत्र, ताम्रचूड अर्थात् अग्नि के समान शिर के लालबाल, ब्रह्मचारी-बालब्रह्मचारी, शिखिध्वज-मोर पर सवार हैं। तारकासुर को मारने वाले भगवती पार्वती के ज्येष्ठ पुत्र, क्रौञ्चपर्वत पर एक राक्षस मारने वाले शत्रु और छः मुखवाले षडानन हैं॥२॥

शब्दब्रह्ममुद्रश्च सिद्धः सारस्वतो गुहः।
सनत्कुमारो भगवान् भोगमोक्षफलप्रदः॥३॥

अर्थ—कुमार स्कन्द शब्दब्रह्म अर्थात् शब्दार्थों के तत्त्ववेता, सरस्वती के वरदपुत्र, गुहः कठिन साधना से जानने योग्य हैं। सनक-सनन्दन-सनातन और सनत्कुमार बालखिल्यों के समान ही स्कन्द जो ही ब्रह्माजी की प्रथम मानस सृष्टि हैं। साक्षात्भगवत्स्वरूप विष्णु और सांसारिक सभी सुख तथा अन्त में मुक्ति प्रदान करने वाले हैं॥३॥

सर्वागमप्रणेता च वाञ्छितार्थप्रदर्शनः।
अष्टविंशति नामानि मदीयानि यः पठेत्॥४॥

अर्थ—स्वामी कार्तिकेय सभी आगम अर्थात् दर्शनशास्त्रों के प्रणेता रचनाकार और वाञ्छित अभीष्टफल को देने वाले हैं। भगवान स्कन्द स्वयं कहते हैं कि इस प्रकार मेरे अट्ठाइस नामों को जो सूर्योदय से पूर्व पढ़ता है तो वह॥४॥

प्रत्यूषे श्रद्धायुक्तो मूको वाचस्पति भवेत् ॥५॥

अर्थ—व्यक्ति श्रद्धा और विश्वास करने वाला गूंगा-मूर्ख भी वाचस्पति अर्थात् बृहस्पति के समान वक्ता हो जाता है ॥५॥

महामन्त्रभवामीति नात्र कार्या विचारणा।
महाप्रज्ञानमाप्नोति मम नामानुकीर्तनम् ॥६॥

अर्थ—यह मेरें अट्ठाइस नाम ही महामन्त्र हैं, इसमें कोई शङ्का नहीं करनी चाहिये। व्यक्ति इन नामों के पाठ से महाप्रतिभा को प्राप्त कर लोक में महावक्ता ज्ञानी के रूप में महती प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लेता है ॥६॥ इति।

●●

पुत्रप्राप्ति के लिये भगवान सूर्य का सिद्ध वंशकवच

आगे हम भगवान सूर्य के दुर्लभ वंशकवच के पाठ का मन्त्र एवं विधि लिख रहे हैं। यह भगवान सूर्य का दुर्लभ कवच वन्ध्यास्त्री अथवा केवल कन्यायें ही जिन्हें हों अथवा एक ही कन्या अथवा एक ही पुत्र हो उसे 'काकवन्ध्या' कहते हैं। ऐसे पति-पत्नी को इस कवच से भी ऐसे ही पुत्र, वह भी तेजस्वी, यशस्वी, खानदान को उच्च शिखर पर ले जाने वाले दीर्घायु होते हैं। यह कवच मात्र सूर्योपासना का अंग है, ऐसे विरले ही लोग होंगे जो इस कवच का प्रयोग जानते होंगे।

यह कवच भगवान सूर्यनारायण द्वारा स्वयं अपने मुख से उपदेश कर अपने सारथी अरुण को दिया गया है। यह अद्‌भुत चमत्कारी कवच है। एक बार अरुण ने भगवान सूर्य से इस बारे में पूछा तब भगवान सूर्य ने इसका उपदेश लोकमंगल के लिये दिया था। भगवान सूर्य आदित्य हैं। इन्हें नारायण भगवान विष्णु का तेज माना गया है। नारायण ने सर्वप्रथम योगविद्या का उपदेश आदित्य नारायण को दिया था। आदित्य नारायण ने अपने पुत्र राजा मनु को और मनु ने अपने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को और

इक्ष्वाकु ने अपने पुत्र उत्तानपाद को, उन्होंने भी अपने पुत्र ध्रुव को तथा क्रमशः राजा निमि के वंश में राजा जनक को तथा पुनः सूर्यवंश में उत्पन्न जडभरत से यह विद्या जैन सम्प्रदाय एवं सूर्यवंश में उत्पन्न समस्त राजाओं ने अपने-अपने पुत्रों के माध्यम से बौद्धों तक में आई। द्वापर तक व्यासजी के बाद यह विद्या लुप्त-सी हो गई थी। पुनः भगवान कृष्ण ने इस योगविद्या को महाभारत के युद्ध में भगवद्गीता में अर्जुन को अट्ठारह अध्यायों में नाना प्रकार के योगविद्या को बताया है। कलियुग में महर्षि पतञ्जलि ने 'पातञ्जल योगदर्शन' नामक अष्टाङ्गयोग का उपदेश दिया है। आजकल इसी योगदर्शन को बहुत से विद्वान् योगविद्या के नाम से जानते हैं, किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। योगविद्या कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग, मन्त्रयोग, प्रणवयोग, ध्यान-ज्ञानादि अनेक रूपों में शास्त्रों में वर्णित है। सूर्य भगवान् वंशवृद्धि के साथ ही सभी रोगों विशेषकर चर्म-कुष्ठ रोगों के नाशक, शत्रुओं के विनाशक और बुद्धि तथा ज्ञान के प्रकाशक देवता हैं। श्रीराम ने सूर्योपासना से ही अजेय रावण का विनाश किया था। इसके लिये 'आदित्यहृदयस्तोत्र' का विधान आगे बताने की इच्छा है।

वस्तुतः प्रथमयोगी तो भगवान शिव ही हैं। उन्हीं से ब्रह्मा-विष्णु सहित सभी देवों-योगियों को योगविद्या प्राप्त है। नवग्रहों के राजा भी भगवान सूर्य ही हैं। देवों-पितरों के कर्म उन्हीं में सुरक्षित रहते हैं। वर्षा-उर्जा के कारण भी वही हैं। स्वयं नारायण भी उन्हीं के बिम्ब के मध्य बैठकर जगत् को प्रकाशित करते हैं।

अथ वंशकवचम्

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

भगवन् देव देवेश कृपया त्वं कथय प्रभो।
वंशाख्यं कवचं ब्रूहि मह्यं शिष्याप्यतेऽनघ॥
यस्य प्रभावाद्देवेश वंशवृद्धिर्हि जायते॥१॥

व्याख्या—अरुण नामक भगवान सूर्य के सारथी ने भगवान भास्कर से कहा कि हे देवों के देव भगवान भास्कर! कृपा कर मुझे अपने वंशकवच

को मुझे बताने का कष्ट स्वीकार कीजिये, जिसके प्रभाव से पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि होती है ॥१॥

सूर्य उवाच

अपने सारथी अरुण के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान आदित्य नारायण सूर्य ने कहा—

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि वंशाख्यं कवचं शुभम्।
सन्तानवृद्धिर्यत्पाठात् गर्भरक्षा सदा नृणाम् ॥२॥

व्याख्या—हे पुत्र अरुण! अत्यन्त शुभफलदायक 'वंशकवच' मुझसे तुम सुनो। इस 'वंशकवच' के पाठ से स्त्री के गर्भ की रक्षा सर्वदा और सर्वथा होती रहेगी ॥२॥

वन्ध्याऽपि लभते पुत्रं काकवन्ध्या सुतैर्युता।
मृतवत्सा सपुत्रा स्यादृश्रवद्गर्भा स्थिरप्रजा ॥३॥

व्याख्या—हे पुत्र! इस कवच के पाठ से बांझ स्त्री भी पुत्र की प्राप्ति कर लेती है, काकवन्ध्या जिस स्त्री को एक पुत्र अथवा पुत्री के बाद दूसरी सन्तान नहीं होती वह काकवन्ध्या कहलाती है। जन्म के पूर्व ही गर्भ में मर जाने वाले बच्चे तथा गर्भधारण के कुछ दिन बाद ही गर्भ का श्राव हो जाने वाले बच्चे, यह सभी बाधा इस भगवान सूर्य द्वारा बताये गये वंश कवच के पाठ से स्थिर-दृढ़ गर्भ होकर समयानुसार सुन्दर, गुणी, दीर्घजीवी पुत्र होते हैं ॥३॥

अपुष्पा पुष्पिणी यस्य धारणाच्च सुभप्रसूः।
कन्याप्रजापुत्रिणी स्यादेतत्स्तोत्रप्रभावतः ॥४॥

व्याख्या—जिसे मासिक न हो अथवा अनियमित मासिक हो उसका मासिक नियत समय से होने लगता है। इस वंशकवचन को भोजपत्र पर लिखकर पूजन कर यन्त्र बनवाकर धारण करने से अवश्य पुत्र उत्पन्न होगा। इसमें सन्देह नहीं है ॥४॥

भूतप्रेतादिजा बाधा या बाधा कुलदोषजा।
ग्रहबाधा देवबाधा बाधाशत्रुकृता च या ॥५॥
भस्मी भवन्ति सर्वास्ताः कवचस्य प्रभावतः।
सर्वे रोगा विनश्यन्ति सर्वे बालग्रहाश्च ये ॥६॥

व्याख्या—भूत-प्रेत आदि के बाधा के कारण, कुलदोष, ब्रह्मदोष, अकालमृत्यु आदि के कारण, दुष्टग्रहों के बाधा के कारण, कुण्डली में पंचमस्थान पुत्र-विद्या आदि का है। यदि इस स्थान पर चन्द्रमा, बुध अथवा शुक्रग्रह रहते हैं अथवा उनकी क्रूर दृष्टि रहती है तब केवल कन्यायें ही होती हैं, पुरुषग्रह सूर्य-मङ्गल-बृहस्पति अथवा शनिग्रह रहते हैं तब ग्रहों के स्वभाव के अनुरूप केवल पुत्र ही होते हैं। इसका ज्ञान पति-पत्नी दोनों की कुण्डलियों से ही करना चाहिये। कुल देवताओं के पूजन के अभाव के कारण अथवा शत्रु द्वारा तान्त्रिक प्रयोग कर कोख मार देने के कारण, यह सभी बाधायें इस वंशकवच के पाठ से भस्म हो जाती हैं। सभी गर्भ के रोग ठीक हो जाते हैं, किसी के बालक को प्रयोग कराकर मार देने वाले इन सभी कारणों को दूर कर यह वंश कवच पुत्र प्रदान करने वाला है ॥५-६॥

पूर्वे रक्षतु वाराही चाग्नेयामस्विकास्वयम्।
दक्षिणे चण्डिका रक्षेत् नैऋत्यां शववाहिनी ॥७॥

व्याख्या—गर्भिणी की गर्भ की रक्षा पूर्व की दिशा से माता वराही देवी करें, पूर्व-दक्षिण के कोने अग्निकोण से स्वयं अम्बिका चण्डिका जी करें, दक्षिणदिशा से चण्डिका जी जो चण्ड-मुण्ड नामक शुम्भ-निशुम्भ दानवों के सेनापतियों को मारने वाली हैं वह रक्षा करें। दक्षिण-पश्चिम की प्रेतों की दिशा नैऋत्यकोण से मुर्दों को कन्धे पर रख कर श्मशान भूमि में विचरण करने वाली माता शववाहिनी रक्षा करें ॥७॥

वाराही पश्चिमे रक्षेद् वायव्यां च माहेश्वरी।
शाकम्भरी शिरोरक्षेदीशाने सिंहवाहिनी ॥८॥

व्याख्या—पश्चिम दिशा से गर्भ की रक्षा वाराही, वायव्यकोण (पश्चिम-उत्तर) से भगवती माहेश्वरी अर्थात् माता पार्वती करें। उत्तर दिशा से माता वैष्णवी अर्थात् महालक्ष्मी जी करें, ईशानकोण (पूर्व-उत्तर) से माता सिंह-वाहिनी दुर्गा जी गर्भ की रक्षा करें ॥८॥

उर्ध्वन्तु शारदारक्षेदधो रक्षतु पार्वती।
शाकम्भरी शिरोरक्षेन्मुखं रक्षतु भैरवी ॥९॥

व्याख्या—मेरे गर्भस्थ शिशु के ऊपर भाम की रक्षा माता शारदा जी

करें, नीचे से माता पार्वती जी, शिर की रक्षा माता शाकम्भरी, मुख की रक्षा माता भैरवी देवी करें ॥९॥

कण्ठं रक्षतु चामुण्डा हृदयं रक्षताँच्छिवा।
ईशानी च भुजौ रक्षेत् कुक्षिं नाभिं च कालिका ॥१०॥

व्याख्या—गर्भस्थ बालक के कण्ठ की रक्षा चण्ड-मुण्ड को मारने वाली माता चामुण्डा, हृदय की रक्षा भगवती शिवा, भुजाओं की रक्षा माता ईशानी, कोंख की रक्षा तथा नाभि की रक्षा माता कालिका जी करें ॥१०॥

अपर्णाह्युदरं रक्षेत् कटिं वस्तिं शिवप्रिया।
ऊरू रक्षतु कौमारी जया जानुद्वयं तथा ॥११॥

व्याख्या—उदर (पेट) की रक्षा माता अपर्णा, कटि और वस्ति मूत्रेन्द्रिय-मलेन्द्रिय इन दोनों की रक्षा शिव की प्रिया पार्वती जी, दोनों जङ्घों के ऊपर कौमारी, दोनों घुटनों की रक्षा देवी जया जी करें ॥११॥

गुल्फौ पादौ सदा रक्षेत् ब्रह्माणी परमेश्वरी।
सर्वाङ्गानि सदा रक्षेत् दुर्गादुर्गतिनाशिनी ॥१२॥

व्याख्या—दोनों गुल्फों (जङ्घा के ऊपर का भाग) और दोनों पैरों की रक्षा माता परमेश्वरी ब्रह्माणी तथा सभी शेष अङ्ग-उपाङ्गों की रक्षा सभी दुर्दशा को मिटाने वाली सिंहवाहिनी माता दुर्गा जी करें ॥१२॥

नमो देव्यै महादेव्यै दुर्गायै सततं नमः।
पुत्रसौख्यं देहि-देहि गर्भरक्षां कुरुस्व नः ॥१३॥

व्याख्या—माता जगज्जननी दुर्गा जी को जो सब माताओं में श्रेष्ठ हैं, वह हमारी सभी पुत्रप्राप्ति की बाधाओं को दूर कर मुझे पुत्र का सुख देतीं हुईं सभी ओर से गर्भ की रक्षा कर मेरी पुत्र प्राप्ति की कामना सर्वथा पूर्ण करनें की कृपा करें ॥१३॥

आगे मुख्य कवच है। इसका एक सौ आठ बार पाठ कर कुश से गङ्गाजल अथवा शुद्धजल को गर्भिणी के मासिक से शुद्ध होने पर पाँचवें दिन सोने से पूर्व पण्डित अथवा पति स्त्री के ऊपर तथा विस्तर पर अभिमंत्रित जल छिड़क कर शेष जल स्त्री को पिला दें। यह अनुभूत प्रयोग मनोकामना अवश्य पूर्ण करता है।

मन्त्र—"ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं ॐ श्रीं श्रीं श्रीं ॐ ऐं ऐं ऐं श्रीमहाकाली श्रीमहालक्ष्मी श्रीमहासरस्वतीरूपायै नवकोटिमूर्ति दुर्गायै नमः। ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं दुर्गतिनाशिनि सन्तानसौख्यं देहि-देहि बन्ध्यात्वं मुत्वत्सात्वं च हर हर गर्भरक्षां कुरुकुरु। सकलां बाधां कुलजां वाह्यजां कृतामकृतां च। नाशय नाशय सर्वगात्राणि रक्ष रक्ष गर्भं पोषय पोषय। सर्वोपद्रवं शोषय शोषय स्वाहा।।" इति।

मन्त्र का भाव—श्रीमहालक्ष्मी जी का बीज-प्राणमन्त्र 'ह्रीं' है। यहाँ कवच में इसका तीन बार प्रयोग हुआ है; इसी प्रकार 'श्रीं' महाश्री भगवान विष्णु की दो पत्नियों में यहाँ श्री का बोधक है, 'ऐं' यह प्राणबीज महाकाली जी का है। इस बीज का भी तीन बार प्रयोग कर इस कवच को भगवान सूर्य ने अमोघ बना दिया है। यह सब मिलकर तैंतीस करोड़ हिन्दूधर्म के देवों-देवियों को नव करोड़ रूपों मन्त्रों में माता दुर्गाजी का विस्तार है। यह इन तीन बीजमन्त्रों में सभी समाहित हैं। माता दुर्गा जी से सब गुणों से युक्त पुत्र की मांग की गई है। इसी में बांझपन अथवा गर्भ गिर जाना अथवा मृत बालक उत्पन्न होने से जीवितपुत्र गर्भ की रक्षा की कामना की गई है। सभी ईश्वरीय, ग्रहजन्य अथवा शत्रु के प्रयोगों को नष्ट कर गर्भरक्षा की मांग की गई है। अन्त में गर्भस्थ रज-वीर्य से बनने वाले गर्भपिण्ड की सभी प्रकार से रक्षा करने की यहाँ प्रार्थना है। यही इस मूल कवच मन्त्र का तात्पर्य है।

अनेन कवचेनाङ्ग शतवाराभिमन्त्रितम्।
ऋतुस्नाता जलं पीत्वा भवेद् गर्भवती ध्रुवम्।।१४।।

व्याख्या—इस प्रकार उपर्युक्त कवच का पाठ लोटा-गिलास अथवा शीसे के बोतल में गङ्गा जी का अथवा किसी पवित्र नदी-तालाब-सरोवर-कुवाँ-नल का शुद्ध जल लेकर कुश से कवच का १०८ बार (प्रतिपाठ) ऋतुस्नाता अर्थात् मासिक की शुद्धि के पाँचवें दिन, कुश से जल स्त्री पर छिड़क कर शेष जल उसे पिला दें, ऐसा करने पर पति से सङ्गम करने पर स्त्री अवश्य ही गर्भवती हो जायेगी। यह क्रिया सोने से तत्काल पहले करनी चाहिये।।१४।।

गर्भपातभये पीत्वा दृढ़गर्भा प्रजायते।
अनेन कवचेनाङ्ग मार्जितायां विशागमे।।१५।।

व्याख्या—भगवान सूर्य ने अपने पुत्र अङ्ग-अरुण को बताया कि इसी कवच से बाँझ अथवा किसी प्रकार के गर्भ के नष्ट हो जाने पर सोने से पहले यह क्रिया करनी चाहि, कुश से जल भी छिड़कना चाहिये॥१५॥

सर्वाबाधाविनिर्मुक्ता गर्भिणी स्यान्न संशयः।
अनेन कवचेनेह ग्रन्थितं रक्तदोरकम्॥१६॥

व्याख्या—हे अरुण! इस कवच से स्त्री के पैर से शिर तक लाल डोरा नाप कर उसे कई गुना कर यदि स्त्री के कमर में बाँध दिया जाय तो स्त्री के गर्भवती होने में कोई सन्देह नहीं रहता है॥१६॥

कटिदेशे धारयन्ती सुपुत्रसुखभागिनी।
असूत पुत्रमिद्राणी जयन्तं तत्प्रभावतः॥१७॥

व्याख्या—हे अरुण! देवों के राजा इन्द्र को भी कोई पुत्र नहीं हो रहा था, किन्तु इसी कवच का प्रयोग इन्द्राणी-इन्द्र की पत्नी पर किया गया। इसी कवच तथा लालडोरा कमर में बँधवाने के बाद इन्द्राणी को गर्भ रह गया और जयन्त नामक बलशाली पुत्र उत्पन्न हुआ॥१७॥

गुरूपदिष्टं वंशाख्यं कवचं तदिदं सखे।
गुह्याद् गुह्यतरं चेदं न प्रकाश्यं हि सर्वतः॥
धारणात् पठनादस्य वंशच्छेदो न जायते॥१८॥

व्याख्या—यह भगवान् आदित्यनारायण का अरुण के प्रति दिया हुआ वंश कवच का उपदेश अत्यन्त गुप्त से भी गुप्त है। इसे सभी नहीं जानते। अतः इस कवच को सबको नहीं बताना चाहिये, इसके पाठ तथा यन्त्र में धारण करने से कभी भी वंश का उच्छेद नहीं होता॥१८॥

बाला विनश्यन्ति पतन्ति गर्भास्तत्राबलाकष्टयुत्ताश्च जाताः।
बालग्रहैर्भूतगणैश्चरोगैर्न यत्र धर्माचरणं गृहं स्यात्॥१९॥

व्याख्या—गर्भ न रहे अथवा लड़के मरते जाँय, गर्भ गिर जाँय, इससे स्त्री कष्ट में रहे, बालग्रह, भूत-पिशाच की बाधा, उदर-प्रदर आदि के रोग उसी घर में होते हैं जहाँ धर्म-कर्म का पालन नहीं किया जाता है॥१९॥

विशेष—यद्यपि यह प्रयोग गुप्त होने से किसी को यह बताना नहीं चाहिये, तथापि लुप्त होतीं प्राचीन विद्याओं की जानकारी सबको हो सके,

विधायें लुप्त न हो जाँय, इसलिये मैंने इस दुर्लभ प्रयोग को सबके लिये लिख दिया है ॥

॥ इति शिवम् ॥

तीर्थों की स्थिति

प्रातः स्मरणीय मन्त्र

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥ इति ।

व्याख्या—अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका और द्वारावती यह सात भारतीय पुरियाँ पवित्रतम तीर्थों का प्रातः स्मरण अथवा इन तीर्थों में पाञ्चभौतिक शरीर त्यागने पर मोक्ष मिलता है।

१. अयोध्या—श्रीराम-भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न की जन्मभूमि है। मनुष्य यदि अयोध्या में शरीर का त्याग करता है तो उसे मुक्ति मिल जाती है। यह नगरी आदि सूर्यवंशीय नरेश महाराजा मनु की बसाई हुई है। 'न योद्धुं योग्या साऽयोध्या' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिस नगरी को मनु से लेकर आज तक कोई जीत नहीं पाया वही अयोध्या नगरी है। यह नगरी श्रीराम के अमोघ धनुष के ऊपर स्थित है। इसी लिये कहा गया है कि—

मेध्या महर्षि चरितैरचितैरयोध्या,
अयोध्येति विश्वविजिता मनुराजधानी ।
यत्रोच्छलन्ति कलिकालमलावंशा-
न्निर्वाणरङ्ग चतुराः सरयूतरङ्गाः ॥

—(योगवशिष्ठ)

व्याख्या—जो मेधा-प्रज्ञा उत्कृष्ट वीरतावाले रघुवंशीय चक्रवर्ति नरेन्द्रों की राजधानी रही है। यह ब्रह्मा के मानसपुत्र सूर्य और उनके प्रथम पुत्र राजा मनु और महारानी शतरूपा के द्वारा निर्मित और बसाई गयी आदि नगरी है। यह समस्त विश्व जीत कर एकछत्र, निष्कंटक राज्य करने वाले मनु, इक्ष्वाकु, उत्तानपाद, ध्रुव, सगर हरिश्चन्द्र, रघु, दिलीप, अज, दशरथ,

श्रीराम के द्वारा सुस्थिर संचालित राजधानी रही है। यहाँ ब्रह्मा द्वारा अपने मन से उत्पन्न किये गये मानसरोवर से बाण द्वारा बेंध कर महाराज मनु द्वारा माता सरस्वती जिनका दूसरा नाम सरयू-घाघरा आदि है। यह उत्ताल तरङ्गों से उच्छलित शुभ्र वारिधारा से घर-घर शब्द करती हुई कहीं घाघरा भी कही गईं हैं। इन्हीं के उत्तरी तट पर सभी राजा महाराजाओं की चन्दन की अन्तिम चिता लगती रही है। मात्र श्रीरामसहित सभी भाई और प्रजा राम के साथ सरयू में डुबुकी लगा कर दिव्य देह से दिव्य विमानों पर आरूढ़ ओकर वैकुण्ठधाम गये थे। राजा सगर के साठि हजार दिव्यपुत्रों ने अपने नखों से विस्तृत पृथ्वी को खोदकर अपार सागर का निर्माण किया है। राजा सत्य हरिश्चन्द्र की तपस्या से विराट विष्णु के चरण का चरणामृत भगवान ब्रह्मा जी के कमण्डलु से इस धरा पर देवनदी गंगा जी को हिमालय पर्वतराज पर शिव की सघन जटा- (वनस्पतिपुञ्ज ही एक प्रकार से शिव की जटा है) से गङ्गा को ले आये हैं। इस प्रकार से समस्त सृष्टि को विशेष कर भारतवर्ष का ही भाग्य रहा है कि गङ्गा जैसी अमृत नदी यहाँ बहती हैं। अतः श्रीराम के धनुष पर टिकी अयोध्या अजर-अमर शत्रुओं से दुर्जेय है।

२. **मथुरा**—माथुर चतुर्वेदियों के कारण भगवान श्रीकृष्ण तथा बलराम की जन्मभूमि मथुरा है। सर्वप्रथम 'लवण' नामक असुर लवणासुर की राजधानी पवित्र यमुनानदी के दक्षिण तट पर बसी थी। यहाँ सूर्य के पुत्र यमराज की भगिनी यमुना अपने क्षेत्र में प्राण त्यागने वाले जीवों को मुक्ति दिलाती हैं। जो भक्त यमद्वितीया-भैयादूज को माता यमुना के तट पर भाई-बाहन मिलकर दीपदान करते हैं, वह कभी भी यमलोक में नहीं जाते। ऋषियों-मुनियों की प्रार्थना पर श्रीराम ने अपने सबसे छोटे भाई शत्रुघ्न को भारी सेना सहित श्री हनुमान जी के साथ लवणासुर को मारने के लिये भेजा। लवणासुर भगवान. शिव का परमभक्त था। वह उन्हें अपनी भक्ति से प्रसन्न कर भगवान से अमोघ त्रिशूल प्राप्त किया था। इसी से वह सभी राजाओं को परास्त कर चुका था। वह आहार के लिये वृन्दावन के जङ्गलों में विना त्रिशूल लिये भी चला जाता था। श्रीराम ने शत्रुघ्न को भेजते हुये ही यह बता दिया था, जब असुर त्रिशूल न लिया हो तब हे शत्रुघ्न ! तुम उसे मार सकते हो। जब शत्रुघ्न जी ने लवणासुर के मथुरा स्थित राजमहल पर

आक्रमण किया तब वह विना त्रिशूल लिये बाहर आ गया था। आक्रमण की बात जानकर वह दुर्धष असुर त्रिशूल लेने के लिये राजमहल में प्रवेश करना चाहा, तब श्रीहनुमान् जी के सहयोग से शत्रुघ्न ने उसे प्रवेश नहीं करने दिया। विवश होकर उसने अपने अन्य अस्त्र-शस्त्रों से लड़ना प्रारम्भ किया। घमासान युद्ध के बाद लवणासुर मारा गया। वहीं श्रीराम ने शत्रुघ्न को राज्याभिषेक कर मथुरा नगरी का राजा बना दिया। शत्रुघ्न जी ने मुनियों से परामर्श कर मथुरा का नाम बदल कर मधुरा कर दिया। कालान्तर में यहाँ चन्द्रवंशीय राजा यजाति पुरु-कुरु, सूरसेन, भोज, यदु आदि राजा बने। सुरसेन वंश में ही महाराज उग्रसेन का पुत्र कंस उत्पन्न हुआ। इसी कंस की छोटी बहन देवकी से महात्मा वसुदेव का विवाह हुआ। इन्हीं के गर्भ से सप्तमपुत्र संकर्षण शेषावतार बलराम जी और आठवां पुत्र भगवान श्रीकृष्ण हुये। इस प्रकार मथुरा भगवान श्रीकृष्ण के जो विष्णु के ही पूर्णावतार हैं और बाललीला में माखनचोरी सहित अनेक लीला करते हुये, गो-सेवा तथा गौ चराते हुये खेल-खेल में पृथ्वी के समस्त राक्षस-राक्षसियों का विनाश कर दिया। वृन्दावन, गोकुल, गोवर्धन धारण, कालियनाग का मर्दन, चीरहरण, ओखलि में बँधना, मृत्तिका भक्षण, महारास सहित वंशीवादन आदि लीलाओं में भगवान ब्रह्मा जी का, वासुकी नाग का, इन्द्रादि के मान का मर्दन किया है।

गुरु सन्दीपनी जो काशी से ही उज्जैनी गये थे उनके आश्रम में मात्र साठिं दिन में ही सभी कलाओं, विद्या आदि का ज्येष्ठ भाई बलराम जी के साथ विद्याध्ययन पूर्ण कर, गरीब ब्राह्मण सुदामा जी से घनिष्ठ मैत्री कर गुरु दक्षिणा के रूप में मृत गुरुपुत्र को पाताल लोक से शंखचूड़ नामक समुद्र में रहने वाले राक्षस को मारकर उसका देवों का शङ्ख लेकर शङ्खसहित गुरुपुत्र को गुरुदक्षिणा के रूप में गुरु की दक्षिणा देकर मथुरा के राजा उग्रसेन के यहाँ लौट आये। गुरु ने दक्षिणा में प्राप्त पाञ्चजन्यशङ्ख को श्रीकृष्ण को लौटा दिया था। बाद में अनेक लीला करते हुये महाभारत के संग्राम में इसी पाञ्चजन्य शङ्ख को बजा कर तथा श्रीमद्भगवद्गीता का अट्ठारह अध्याय के कुल सात सौ श्लोकों में समस्त योगविद्या का उपदेश देकर अर्जुन सहित पाण्डवों को अर्जुन के रथ पर श्रीहनुमान् जी को ध्वज पर प्रतिष्ठित कर महाभारत का युद्ध जिता दिये थे। बाद की सब कथायें सबको ज्ञात हैं।

ग्यारहवें वर्ष में गोकुल से मथुरा आकर कंस का वध, बीसवें वर्ष में रुक्मिणी जी से विवाह आदि लीलायें कर एक सौ बीस वर्ष में श्रीकृष्ण इस भारतवर्ष के धराधाम का त्याग कर प्रभास क्षेत्र (सोमनाथ शिव के समीप) पाञ्च भौतिक शरीर त्याग कर वैष्णवधाम में द्वारिका में प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार मथुरा-वृन्दावन, गोकुल, गोवर्धन आदि के साथ द्वारिकाधाम में रहकर अनेक दुष्टों का संहार, राजनीति, कूटनीति, धर्मनीति, साम-दान-दण्ड-भेद नीति सहित सभी ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देकर भगवान श्रीकृष्ण और बलराम जी अनेक यथोगाथा महाभारत, श्रीमद्भागवत पुराण, अन्य वैष्णव पुराण, ग्रन्थों, गीता, गीतों आदि में कवियों सन्तों आदि ने गायी है तथा आज भी गायी जाती है। इस विषयों का पूर्ण वर्णन मैंने अपने 'राधातन्त्रम्' की भूमिका में विस्तार से लिखा है। जिज्ञासु वहाँ इस विषय को शिव-पार्वती सम्वाद के रूप में देख सकते हैं। कष्ट है, आज के मिथ्या आडम्बर में पढ़े-लिखे लोग भी इन विषयों को पढ़ने तथा जानने में रुचि नहीं रखते हैं। मथुरा नगरी भगवान विष्णु के चक्रसुदर्शन पर बसी है।

३. माया—मोक्षदायिनी नगरियों में तीसरा स्थान माया अर्थात् हरिद्वार अथवा हरद्वार नगरी का है। यह नगरी चण्डीदेवी और मनसादेवी के पर्वतों के बीच गङ्गा जी के पश्चिम तट पर अत्यन्त रमणीक है। भगवान केदारनाथ से उत्पन्न मन्दाकिनी गङ्गा गोमुख-गंगोत्री से निकली भागीरथी गङ्गा में मन्दाकिनी गङ्गा गौरीकुण्ड से मिल जाती हैं। दोनों तटों पर सन्त-महात्माओं के आश्रम तथा अनेक मठ-मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। पूर्व दिशा से तिब्बत के पर्वतों से होकर यक्षों के राजा कुबेर की अलकापुरी से बहती हुई अलकनन्दा गङ्गा भगवान बदरीनाथ का पादप्रक्षालन करती हुई नर-नारायण पर्वतों के मध्य से होती हुई रुद्रप्रयाग में मुख्यधारा भागीरथी में मिल जाती हैं। यहाँ सङ्गम की छटा अत्यन्त मनोहर दिखती है। इसके आगे अनेक गङ्गाओं की धाराओं को लेकर औषधीय धाराओं को अपने गोद में समेटती हुई भागीरथी पर्वतों, वनों, मन्दिरों, साधु-सन्तों को सुख देती हुई हृषिकेश (ऋषिकेश) में सप्तर्षियों के पावन आश्रमों को पवित्र करती हुई सात धारायें एक में मिलकर हरिद्वार में पृथ्वी पर उतरती हैं। शिव और विष्णु के धामों का हिमालय में प्रवेश मार्ग होने से ही इस स्थान का नाम हरिद्वार अथवा

हरद्वार नाम पड़ा है। यह नगर आदि प्रजापति दक्ष की प्रथम यज्ञभूमि भी है। यहीं कनखल की यज्ञ में माता सती के हवनकुण्ड में सती ने योगअग्नि में अपना शरीर त्याग दिया था। यहाँ गुरुकुल विश्वविद्यालय स्थापित है। वर्तमान कनखल आज के योगी बाबा रामदेव के कर्म की स्थली बन गई है। उत्तराखण्ड राज्य के सहयोग से योगविद्या तथा आयुर्वेद की औषधियों का मुख्य केन्द्र है।

हरिद्वार शिवलिङ्ग तथा विष्णु के ऊपर बसी है। चार कुम्भों में से एक अर्धकुम्भ छः वर्ष तथा बारह वर्ष में पूर्णकुम्भ का मेला लगता है। हजारों मठों, आश्रमों से युक्त साधु-सन्तों का यहाँ जमावड़ा है। आज के प्रदूषण से मुक्त हरिद्वार में गङ्गाजल शीतल और निर्मल है। दुःख है अंग्रेजों ने हरि की पैड़ी पर गङ्गा जी को बाँध कर वह अनुपम जल गङ्गानहर के माध्यम से पञ्जाब राज्य और हरियाणा राज्य को सींच दिया है। इसीलिये यह दोनों राज्य अन्न के उत्पादन में अग्रणी हैं। इसी कारण मुख्य धारा का थोड़ा जल आगे आने से आजकल गङ्गा मैली हो गई हैं। आगे जह्नुऋषि का आश्रम है। जहाँ राजा भगीरथ के रथ के पीछे चलती हुई गङ्गा आश्रम बहा ले गईं थीं। इस पर ऋषि ने क्रोध कर गङ्गा जी को ही आचमन कर गये। पुनः राजा के अनुनय-विनय पर कानों से गङ्गा जी को छोड़ दिया। इसी कारण गङ्गाजी का एक नाम जाह्नवी पड़ गया।

प्रसङ्गतः यहाँ हरि और हर शब्द का अर्थ लिखना आवश्यक समझता हूँ। महर्षि पाणिनि के धातुपाठ के अनुसार 'हञ्—हरणे' धातु से हरण, चुराने अथवा नाश कर देने के अर्थ में 'हञ्' धातु का प्रयोग हुआ है। हरण-अपहरण अथवा गायब कर देने के अर्थ में 'हञ्' धातु से 'अञ्' प्रत्यय तथा ञकार को इकार कर हरिशब्द बनता है। इकार न करने पर हर शब्द बनाता है। दोनों का अर्थ है—'हरति नाशयति भक्तानां, साधुनाम्, योगिनां, ज्ञानिनां, शरणागतप्रपन्नानाञ्च दुःखरूपाणि पापानि यस्मात्तस्मात्स हरिः हरो वा।' अर्थात् जो भक्तों, साधुओं, योगियों, सन्तों, ज्ञानियों तथा शरण में आये हुये व्यक्तियों का पापतापरूप दुःख के पर्वत को समूल निर्मूलन कर दें वही हरि अथवा हर हैं। हरि भगवान विष्णु और हर भगवान शिव हैं। इसीलिये हरि-कीर्तन, अध्यात्मकीर्तन आदि किये जाते हैं। शरणागत रावण

राक्षस के छोटे भाई विभीषण की रक्षा कर श्रीराम ने रावण सहित सभी दैत्यों का समूल नाश कर दिया था। भगवान श्रीकृष्ण ने खिलौन बेचने वाली की डाली रत्नों से भर दिया था। पण्डित-साधु सुदामा ब्राह्मण महादरिद्र से धनपति कुबेर हो गये थे। इसीलिये कलियुग के लिये केवल राम तथा कृष्ण नाम ही आधार है। इसी रहस्य को महर्षि वाल्मीकि रामायण में लिखते हैं—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्यैव नास्त्यैव नास्त्यैव गतिरन्यथा।।

—(वाल्मीकिरामायण)

अर्थात् कलियुग में मात्र एक राम या कृष्ण अथवा दुर्गा जी का नाम स्मरण ही पार लगाने का एक मात्र उपाय है, अन्य कोई योग जप-जप-ध्यान नहीं।

गोस्वामी तुलसीदास जी भी यही बात इस चौपाई में लिखते हैं—

कलियुग केवल नाम अधारा। जान लेहु जो जाननि हारा।।

—(रामचरितमानस)

भगवान ब्रह्मा जी देवी दुर्गाजी के सम्बन्ध में भी इसी बात की पुष्टि करते हैं—

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नामः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणतास्मताम्।।

—(दुर्गासप्तशती, ५/१)

अर्थात् समस्त जगत् की जननी माँ दुर्गा का जो महादेवी, शिवा, प्रकृति, भद्रा आदि नामों से भी जानी जाती हैं, उनका श्वास-प्रश्वास से मेरा प्रणाम है।

धर्मसम्राट् यतिराज करपात्री जी एक बार अपनी कथा में कह रहे थे कि देखो भाई—रामनाम तो अतिसुन्दर-सहज, सबके कहने योग्य है, किन्तु कृष्णनाम में ककार के नीचे ऋकार, आधा णकार और मूर्धन्य षकार यह सभी अक्षर सामान्य व्यक्ति से ठीक से उच्चारित नहीं होते, इसलिये प्रयास करना पड़ता है। तब रामनाम जैसा सुखद उच्चारण होते हुये भी कृष्णनाम

क्यों लिया जाय? ऐसा प्रश्न कर महात्मा ने उत्तर दिया था कि देखो भाई! रामनाम तो सबको पार लगाता ही है, किन्तु कृष्णनाम के नीचे जो कांटा के समान ऋकार है वह उस पापी के लिये है जिसकी लोटिया गहरे कुएँ में गिर गई है। उसे निकलने के लिये रस्सी में बाँध कर कांटा लगाना पड़ता है। अतः घोर से घोर पापी का उद्धार कृष्ण नाम से ही होता है।

भगवान शब्द में भग शब्द लगा है। भग शब्द का अर्थ सम्पूर्ण सौन्दर्य-माधुर्य और ऐश्वर्य के मूल का नाम है। भगवान शिव, राम, कृष्ण, दुर्गा यह सभी नाम इन तीनों गुणों से युक्त हैं। इसीलिये इन नामों का कीर्तन का विधान ऋषि-महर्षियों ने कलियुग के लिये किया है।

पुराणों के अनुसार—

ऐश्वर्यसमग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रिया।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतरिणा।।
प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च भूतानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति।।

—(पुराणवचन)

अर्थात् समग्र ऐश्वर्य, समग्रधर्म, सभी यश, सभी श्री-लक्ष्मी, सभी ज्ञान, सभी वैराग्य इन छह तत्त्वों को जो भलीभाँति जानता है उसी के लिये भग-भगवान शब्द का प्रयोग किया जाता है। जो कार्य की प्रवृत्ति शुभारम्भ, निवृत्ति-कार्य पूर्ण कर विश्राम, जीवों के भूत-भविष्य और वर्तमान को जानता है, कार्यसिद्धि की विद्या-उपाय, अविद्या-कार्य रोक देने का समय जो इन सभी शुभगतिविधियों को भलीभाँति जानकर कार्य करता है, वस्तुतः वही भगवान्-नेता-वक्ता तथा कुशल व्यक्ति है।

४. काशी—चौथा मोक्षस्थान भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा की विशिष्ट नगरी काशी है। यह सप्तपुरियों में सर्वश्रेष्ठ है। यह नगरी पवित्र गङ्गा के अर्धचन्द्र स्वरूप में पश्चिम तट पर बसी है। स्वयं अपने त्रिशूल पर भगवान शिव ने इस नगरी को बसाया है। सबका योग-क्षेम माता अन्नपूर्णा करती हैं। यह आनन्द वन और अविमुक्त क्षेत्र है। माता और पिता दोनों ही इस नगरी के राजा-रानी हैं। अन्य पुरियों में शरीर त्यागने पर सद्यः मुक्ति नहीं मिलती। जीव किसी न किसी रूप में काशी के मुक्तिक्षेत्र में पुनः जन्म

लेकर सद्यः मुक्ति का अधिकारी हो पाता है। 'मरणं यत्र मङ्गलम्' इस शास्त्रीय उक्ति के अनुसार काशी में मरने पर जीव चाहे किसी योनि में क्यों न उत्पन्न हुआ हो? वह सदा के लिये जन्म-मरण के बन्धन में नहीं पड़ता। इसी परमानन्द प्राप्ति के कारण काशी को महाश्मशान और मुक्ति का धाम कहा गया है। एक और भी विलक्षणता है; क्योंकि मृत्यु के समय काशी में जीव का दाहिना कान ऊपर हो जाता है। योगी का प्राण ब्रह्मरन्ध्र फटकर ज्योति में मिल जाता है, किन्तु संसारी का प्राण नवपुरों से उत्क्रमित होता है। इन नवपुरों में दो कान, दो नाक, दो आँख, एक मुँख और दो मलेन्द्रिय तथा मूत्रेन्द्रियां यह सभी मिलकर नवपुर हैं। ब्रह्मरन्ध्र के बाद यह दूसर स्थान पर हैं। भगवान विश्वनाथ श्रीराम का तारकमन्त्र इस दाहिने कान में देकर दिव्यज्ञान द्वारा जीव का सभी प्रारब्ध कर्म क्षीण कर मुक्ति दे देते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने इसी भाव को इस सोरठा के माध्यम से व्यक्त किया है—

जन्ममुक्तिमहिजानि ज्ञानखानि अघहानिकर।
जहँ वस शम्भु भवानि सो काशी सेइय कस न।।

—(श्रीरामचरितमानस)

काशी शिव त्रिकोण में वसी है, इसके साथ एक बात और है, जिसे ऋषियों ने बताया है। काशी के पश्चिम भाग त्रिकोणपथ पर माता आदिशक्ति सती देवी भीमचण्डी का सुन्दर मन्दिर तथा देवी का विग्रह है। काशीखण्ड में इसके लिये यह लिखा गया है—

काश्याः पश्चिमे भागे भीमशती दैव्याश्च विग्रहः।
तस्याः स्मरणमात्रेण जयी भवति सर्वदा।।

—(स्कन्धपुराण, काशी खण्ड)

अर्थात् काशी नगरी के पश्चिम दिशा में भीमचण्डी देवी का सुन्दर मन्दिर तथा देवी की मूर्ति है। इनके दर्शन-पूजन से व्यक्ति सर्वदा विजयी होता है। यहाँ बड़ा कुवां शुद्धजल से भरा रहता है। विमलजल के पान से सभी रोग दूर हो जाते हैं। अनेकों धर्मशालायें और खाने-पीने तथा पूजा की सभी सामग्री उपलब्ध रहती हैं। यहाँ के सभी लोग अत्यन्त धार्मिक हैं। दूध-दही भरपूर उपलब्ध रहता है।

काशी के पूर्व दिशा में साहूपुरी-खादमिल रामनगर के समीप वेदव्यास शिव मन्दिर वेदव्यास महर्षि द्वारा स्थापित है। अहर्निश वेदव्यास जी शिव का यहाँ अभिषेक पूजन-कीर्तन करते रहते हैं। महाभारत के अनुसार एक बार महर्षि वेदव्यास जी अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ भगवान विश्वनाथ जी का दर्शन करने आये, किन्तु अन्नपूर्णा जी का दर्शन न कर सके। इस पर माता को क्रोध हो गया। काशीक्षेत्र से बाहर निकल जाने का आदेश माता जी ने दे दिया। दुःखी और भूखे-प्यासे शिष्यों के साथ महर्षि व्यास जी काशी के पूर्व दिशा में जाकर शिवलिङ्ग स्थापित कर भगवान का अन्नपूर्णा-सहित पूजन किये। इस पर माता का क्रोध शान्त हो गया। पुनः वहाँ से लौट कर काशी आये। इस बार सोने की थालियों में अमृत भोजन कर शिष्यों सहित तृप्त हो गये। ऐसे कतिपय दिन काशी में अन्नपूर्णा जी द्वारा विविध व्यञ्जनों से तृप्त होकर तब अपने आश्रम को लौटे। आज् 'व्यासनगर' नामक रेलवे स्टेशन काशी और मुगलसराय स्टेशनों के मध्य व्यास जी की कीर्ति को उद्‌घाटित करता है। कहा है—

काश्याः पूर्वभागे व्यासो नारायणः स्मृतः।
तस्य स्मरणमात्रेण अज्ञानी ज्ञानवान् भवेत्।।

—(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड)

अर्थात् काशी के पूर्व दिशा में भगवान व्यासेश्वर शिव प्रतिष्ठित हैं। व्यक्ति उनके स्मरणमात्र से ही ज्ञानयुक्त हो जाता है।

वाराणसी के दक्षिण भाग दुर्गाकुण्ड के माता 'कुष्माण्डा' दुर्गा जी का भव्य मन्दिर तथा भगवती दुर्गा जी का विग्रह एवं पक्का गहरा दुर्गा जी के नाम पर दुर्गाकुण्ड है। इसी कुण्ड से सटा दुर्गा जी का मन्दिर है जहाँ हजारों भक्त नियमित दर्शन-पूजन करते रहते हैं। मन्दिर के दक्षिणद्वार से सटा कुक्कुटेश्वरलिङ्ग है। इस सम्बन्ध में यह जानना चाहिये कि काशी में कुक्कुटदेव नामक ब्राह्मण रहते थे। निरन्तर माता की उपासना में लीन रहने से माता ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि आज से तुम्हारा नाम जो लोग लेंगे उसका रात्रि में देखा हुआ दुःस्वप्न शुभ हो जायेगा। तब से जानकार लोग माता जी का दर्शन कर (कुक्कुटदेव ही शिवरूप होकर वहाँ प्रतिष्ठित हैं) करने से दुःखद स्वप्न शुभप्रद हो जाता है। इस सम्बन्ध में स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में ही यह प्रमाण उपलब्ध है। जैसे—

काश्यां दक्षिणे भागे कुक्कुटो नाम वै द्विजः ।
तस्य स्मरणमात्रेण दुःस्वप्नो सुखदो भवेत् ।।
—(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड)

इस प्रकार शिव की न्यारी नगरी और अन्य नगरियों, पुरियों से सदा विशिष्ट रहीं है और आगे भी रहेगी।

॥ इति शिवम् ॥

वैयाकरणों के शब्द तथा स्फोटवाद की प्रमाणिकता

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार—

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेधव्यं सरवनतन्मयो भवेत् ॥१॥
समाहितमनो ब्रह्मन् ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
हृदयाकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद् विभाव्यते ॥२॥
ततोऽभूत् त्रिधोऽङ्कारो योऽव्यक्तप्रभवःस्वराट् ।
यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥३॥
शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तस्त्रोते च शून्यदृक् ।
तेन वाग् व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥४॥
तस्य ह्यासन् त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगुद्वहः ।
धार्यते यैस्त्रयो भावा गुणानामर्थवृत्तयः ॥५॥
ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजत् भगवानजः ।
अन्तस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादि लक्षणम् ॥६॥
सव्याहृतिकान् सोऽहङ्कारश्चातुर्होतृविवक्षया ॥७॥
—(श्रीमद् भागवत् म० पु०, १२/६ । इति ॥)

व्याख्या—यद्यपि समस्त सृष्टि के मूलकारण भगवान शिव और भगवती पार्वती हैं। उन्हीं की इच्छाशक्ति से यह जगत् उत्पन्न और विलीन होता रहता है, तथापि शिवशक्ति का तेज ही मध्यकारण श्रीविष्णु और अन्तिमकारण भगवान ब्रह्मा जी ही हैं। अव्यक्त और प्रकाशस्वरूप शिव से प्रकाश प्रस्फुटित होकर क्रमशः विष्णु तथा उनके नाभि के कमल से उत्पन्न

प्रजापिता ब्रह्मा जी ही सृष्टि की रचना करते हैं। इनका चार मुख है। इन्हीं चार मुखों से अनादि अपौरुषेय वेदों की उत्पत्ति हुई है। इस कल्प में तीन युग बीत चुके हैं, चौथा वर्तमान कलियुग का लगभग साढ़े पाँच हजार वर्ष भी बीत चुका है। पुराणों के अनुसार ब्रह्मा जी का एक दिन एक कल्प का होता है। अतः प्रतिकल्प का युगमान क्रमशः सत्ययुग का मान सत्रहलाख अट्ठाइस हजार वर्ष १७,२८००० वर्ष, त्रेतायुग का मान-बारह लाख छानवें हजार वर्ष १२,९६००० वर्ष, द्वापरयुग का मान आठ लाख चौसठ हजार—८,६४००० वर्ष और कलियुग का मान चार लाख बत्तीस हजार—४,३२००० वर्ष ब्रह्माजी के दिनमान से एक कल्प-महायुग माना गया है।

भगवान् नटराज के नृत्त और पार्वती के हाव-भाव, आरोह-अवरोह, मूर्च्छना, राग आदि से सृष्टि में रस का संचार तथा संगीतशास्त्र का उदय हुआ है। यतः उस आदि नृत्य में भगवान् ब्रह्मा जी ने सामवेद का गायन, विष्णु ने मृदंग वादन, सरस्वती ने वीणा, श्रीकृष्ण ने मुरली और इन्द्रादि देवों ने ताल, झाल, करताल आदि वाद्य बजाकर सहगान किया था। अतः इसी आधार पर ब्रह्मा जी ने सृष्टि रचना के पूर्व शिव के डमरूवाद्य की ध्वनि पर अपने हृदय के प्रमोद प्रवाह से सर्वप्रथम प्रणव (ॐकार) और अथ शब्द का उच्चारण किया। इसी आधार पर नारद जी ने यह श्लोक रचा।

ॐङ्कारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्वा विनिर्यातो तस्मान्माङ्गलिकाविमौ।।

—(नारद स्मृति)

अर्थात् वेदों के प्रवचन के पूर्व भगवान ब्रह्मा जी के हृदय से उत्पन्न इच्छा की वायु उनके कण्ठ (मुख) से बाहर आकर ॐकार तथा अथ शब्द से ध्वनित हुई। अतः तब से यह दोनों शब्द माङ्गलिक हो गये। ब्रह्मा जी ने ॐकार ध्वनि को धनुष और अपनी आत्मा को बाण बनाकर ॐकाररूपी शब्द का भेधन किया। उस समय ब्रह्मा जी अत्यन्त सावधानी से अपने हृदय से भगवत् स्मरणकर अपनी चित्तवृत्ति को योग द्वार रोक दिये। पुनः चित्तवृत्ति निरुद्ध होकर प्रणव ओङ्कार के अ इ उ ओम् म् (ॐ) से अव्यक्त-मात्र भीतर से ही सुनाई देने वाला स्वर अर्थात् स्वरवर्ण 'अ इ उ ऋ ऌ ए-ऐ ओ औ अं अः' इन अक्षरों का उच्चारण किया। इन स्वर, स्पर्श, उष्म,

अन्तस्थ, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, संयुक्ताक्षर छत्तीस व्यञ्जनवर्ण ब्रह्मा जी के हृदय को स्फुट जहाँ से शब्द और अर्थ पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हैं, वहाँ हृदय के स्फोट से सुप्त क्रम से सुनाई देने वाले सभी अक्षर समूह उत्पन्न हुये। यह अक्षर समुदाय धीरे-धीरे आकाश में गूंजने लगे। पुनः वाग् वाणी अक्षर, शब्द और शब्दसमूह से वाक्य—अर्थ और कार्य के लिये प्रेरित करने वाले शब्द बने। इन्हीं अक्षरतत्त्वों से जीवन निर्माण तथा आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी नामक पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुये। इस कथा को महर्षि व्यास जी ने अपने भृगुवंशीय पुत्र शुकदेव जी और सूत तथा सूत जी ने शौनक आदि ऋषियों को सुनाया है। इन सभी वर्णों में अकार साक्षात् शिव जी का रूप, इकार शक्ति का स्वरूप और उकार विष्णु का स्वरूप है। इन्हीं तीन तत्त्वों में सभी शास्त्र और अनन्त जीव-जगत् उत्पन्न हुये हैं और स्थित हैं। ब्रह्मा जी के कण्ठ से निकली व्याहृतियाँ ॐ भूभूर्वः स्वः तपः महः जनः सत्यम् यह सात व्याहृतियाँ ही गायत्री मन्त्र के पूर्व प्रयुक्त होती हैं। **'गायत्र्यो वेमदातरः'** अर्थात् माता गायत्री ही वेदों की जननी हैं। 'गायन्तं त्रायते इति गायत्री' इस व्याख्या के अनुसार माता गायत्री का गान अर्थात् जप करने वाले का सदा कल्याण होता है।

अतः धर्मशास्त्र में ऐसा निर्देश है—

नान्नोदकं समं दानं च तिथिर्द्वादशीसमा।
न गायत्र्यापरो मन्त्रो न मातुर्दैवतं परम।। —(धर्मशास्त्र)

अर्थात् भूखे को भोजन कराने तथा प्यासे को जल पिलाने जैसा कोई दान नहीं है। एकादशीव्रत सहित बावनद्वादशी के समान कोई पुण्यतिथि नहीं है। इसी प्रकार तैंतीस करोड़ मन्त्रों में गायत्री से बढ़कर दूसरा अन्य मन्त्र नहीं तथा माता-पिता से बढ़कर कोई दूसरा देवता नहीं है। इस प्रकार स्वर-व्यञ्जन आदि अक्षरों, उनके भेद-उपभेद, ॐकार, अकार, इकार, उकार और मकार के साथ का व्याहृतियों के ज्ञान कराने वाले आदि प्रजापति पिता ब्रह्मा जी को बार-बार प्रणाम है। उपर्युक्त मन्त्रों के पाठ से व्यक्ति ज्ञानी और वैज्ञानिक हो जाते हैं।

॥ इति शिवम् ॥

जगद्गुरु दत्तात्रेय का ज्ञानविज्ञानमय स्वरूप

गुरु दत्तात्रेय तथा गुरु दुर्वासा जी प्रत्यक्ष शिव के अवतार हैं। इनमें दत्तात्रेय ज्ञान-विज्ञान तथा दुर्वासा जी सती अनसूया तथा महर्षि अत्रि के रुद्रावतार क्रोधमूर्ति औरसपुत्र हैं। शास्त्रों में दोनों की अमित महिमा एवं लोककल्याणकारकरूप की अनन्त महिमा बताई गई है। इन्हीं दुर्वासा ऋषि के बताये मन्त्रों के प्रभाव से कुन्ती (पाण्डवों की माता) ने सूर्यपुत्र कर्ण, धर्मराजपुत्र युधिष्ठिर, वायुपुत्र भीमसेन, इन्द्रपुत्र अर्जुन तथा कुन्ती द्वारा तथा पाण्डु की दूसरी रानी माद्री से अश्विनीकुमारों से दो पुत्र क्रमशः नकुल और सहदेव जी उत्पन्न हुये हैं, जो कुल छह भाई हैं। इनमें लोकलज्जा से सूर्यपुत्र कर्ण को गङ्गाजी में बहा देने के कारण महावीर कर्ण दुर्योधन के अत्यन्त प्रियपात्र हो गये थे। यह सभी कथा महाभारत में वर्णित हैं।

महाज्ञानी तपोमूर्ति दत्तात्रेय भगवान भी सती अनुसूया और मर्हिष अत्रि के ही प्रथम पुत्र हैं। शिव द्वारा दोनों अत्रिअनुसूया से उत्पन्न सौम्यमूर्ति दत्तात्रेय के अधोलिखित मन्त्रों के कुल छः मन्त्रों के प्रतिदिन पाठ से व्यक्ति भूत-भविष्य-वर्तमान का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

दत्तात्रेयस्तोत्र

मन्त्र–१

मूलाधारे वारिजपत्रे सुचतुष्के वं शं षं सं वर्णविशाले सुविशाले।
रक्तंवर्णं श्रीगणनाथं भगवन्तं दत्तात्रेयं श्रीगुरुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि ॥१॥

व्याख्या—इस मानव शरीर में षट्दलकमल स्थित है। सातवाँ कमलदल सहस्रार है। यहाँ मात्र मणिमयद्वीप में शिवशक्ति का सामरस्य है। यहीं अमृत का कुण्ड है। योगी के रूप में यहाँ तक करोड़ों में कोई पहुँच कर अमृतमय होकर अजर अमर हो जाता है। सर्वप्रथम कुण्डलिनीशक्ति का मूलस्थान मेरुदण्ड के मूल गुद-लिङ्ग के बीच पक्षी के अण्डे की भाँति तीन फड़ों में इडा-पिङ्गला और सुषुम्ना इन प्रमुख नाडियों से गुम्फित बहत्तर हजार नाड़ियों का जाल फैला हुआ है। इन सभी नाडियों में वायु अपना सञ्चार कर भोजन के रस (भोजन-पानी का) तथा रक्त का प्रवाह करते रहते हैं। इन्हीं वायु के संयमन अर्थात् पूरक-कुम्भक और रेचक नामक प्राणायाम क्रिया

से योगी सिद्ध हो जाता है। नाथसिद्ध योगियों का यही कुण्डलिनी योग ही मुख्य क्रिया है। कुण्डलिनों के आधार स्थान को ही इस शरीर का मूलाधार तन्त्र तथा शैव दर्शन में कहा गया है। यह विषय बहुत विस्तृत और अन्यत्र स्वतन्त्र रूप से निरूपणीय है। यहाँ मात्र संक्षिप्त दिग्दर्शन मात्र ही किया गया है। अर्थ जानकर किसी भी क्षेत्र का व्यक्ति यदि इन स्तोत्रों का प्रतिदिन पाठ करता है, तब वह प्रायः अपने क्षेत्र में कुशलता सफलता प्राप्त कर लोक में तो प्रतिष्ठित होता ही है, अन्त में ज्ञान-वैराग्य से मन को वश में कर चित्त की वृत्तियों को ऊर्ध्वगामी बनाकर योग के शिखर पर पहुँच जाता है। यह योगियों-सिद्धों का प्रत्यक्ष अनुभव किया गया स्तोत्र है। यही आन्तरयोग है। आज-कल योग के नाम से केवल योग का एक अङ्ग आसन को ही लोगों द्वारा योग जाना जा रहा है। इस योग से मात्र रोग का शमन कर शरीर को निरोग बनाया जा सकता है। अष्टाङ्गयोग में वर्तमान आसना-क्रियायोग स्थूल बाहरी योग है। आन्तरिक योग ही गोरक्षनाथ के गोरक्ष-संहिता, हठयोगदीपिका, षट्चक्र-विवेक, सिद्ध सिद्धान्त पद्धति तथा गीता का कर्मयोग-ज्ञानयोग तथा भक्तियोग तथा अट्ठारह अध्याओं विस्तृत योग जो देवरहाबाबा, शङ्कराचार्य, गुरु मत्स्येन्द्रनाथ, गुरुगोरथनाथ तथा गुरुगम्भीरनाथ आदि का योग बाह्ययोग न होकर आन्तरयोग ही है। यही शिवयोग, प्रणव-योग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, विभूति-पादयोग आदि आन्तरयोग योगियों का महायोग है। यह आन्तरयोग मुख्यतः दश प्रकार का होता है। जिसे कुण्डलिनी योग के नाम से कठोपनिषद् में बताया गया है। 'विज्ञानभैरव' तन्त्रग्रन्थ में तो तीन सौ सत्तर योगधारणाओं का निरूपण किया गया है। जिसके प्रवक्ता स्वयं भगवान भैरव जी ही हैं। अष्टाङ्ग, षडङ्ग और अनन्त-योगों में मन को प्राण में, प्राण को अपानवायु में अपानवायु को उदानवायु में और उदानवायु को समानवायु में लीन कर ही आन्तरयोग के ऊँचे प्रासाद पर विज्ञानयोगी आरूढ़ हो पाता है।

योग की आन्तर मुद्रायें हठयोगप्रदीपिका में दशप्रकार की बतायी गई हैं। जैसे—

> महामुद्रा महाबन्धो महावेध्यश्च खेचरी।
> उड्डीयानमूलबन्ध्यश्च बन्धो जालन्धराभिदः ।।१।।

करणीविपरीताख्या वज्रोली शक्ति चालनम्।
इदं हि मुद्रादशमं जरामरंणनाशनम्।।२।।

—(हठयोगप्रदीपिका)

अर्थात् शाम्भवी नामक महामुद्रा, प्राणापानादिवायु का महाबन्धन, महाबेधीमुद्रा, विशुद्धिचक्र को बांध कर मूर्धास्थान-कण्ठ की घण्टिका से जीभ को तालु में ऊपर लगाकर सहस्त्रार से टपकते अमृतविन्दु का पान ही खेचरीमुद्रा है, उड्डीयानमुद्रा में हड्डियों-मेरुदण्ड को सीधा करना, मूल बन्धमुद्रा कुण्डलिनी में प्राणवायु को स्थिर करना, जलान्धरबन्धमुद्रा में शरीर में फैली सभी बहत्तर हजार नाडियों का बन्धन-स्पन्दन रहित सबका समान हो जाना है, करणीमुद्रा, कानों में अनाहतनाद को सुनना, विपरीतबन्ध इडा-पिङ्गला सुषुम्नानाडियों का आरोह अवरोह रोक देना, वज्रोली मुद्रा-स्पर्शसुख में भी वीर्यपात न होना, शक्तिचालनमुद्रा-समस्त शरीर में प्राणवायु को रोककर पत्थर के समान कड़ा कर देना। यह ही योग की मुख्य दश महामुद्रायें हैं। इन मुद्राओं का जानकार योगी जरा बुढ़ौती तथा मरण-मृत्यु से रहित हो जाता है।

प्रथमयोग क्रिया शरीर को आहार-विहार से एकदम संयमित कर लेना होता है। इसे लिङ्गमहापुराण में इस प्रकार बताया गया है—

प्राणः स्वदेहजो वायुः यमस्तस्य निरोधनम्।
त्रिधा द्विजैर्यमः प्रोक्तो मन्दमध्यमोत्तमाः।।

—(लिङ्ग०म०पु०, ८/४५-४६)

अर्थात् व्यक्ति के शरीर में स्थित वायु ही प्राण है। उस प्राण को रोककर प्राणायाम करना प्राणवायुका रोकना ही उसका निरोध है। यह क्रमशः योग्य गुरु की सन्निधि में ही करना चाहिये। अभ्यास कर यह प्राणायामक्रिया पहले थोड़ी मन्द होती है, मध्य में कुछ अभ्यास हो जाने पर मध्य और पूर्ण अभ्यास हो जाने पर उत्तम देर तक प्राणवायु रुकने लगती है। वायु के रोकने से व्यक्ति चिरायु अर्थात् दीर्घजीवी हो जाता है। रामायण में वायुपुत्र श्रीहनुमान् जी वायुतत्त्व के प्रतीक हैं। इसी प्राणवायु का निरोध कर वह समुद्र लांघ गये थे। हठयोगप्रदीपिका में वायु कहाँ और किस नाम से जानी जाती है, इसके लिये ऐसा निर्देश है।

हृदिप्राणः गुदेऽपानः समानो नाभिदेशगः ।
उदानः कण्ठदेशस्तु व्यानः सर्वशरीरगः ।।

—(हठयोगप्रदीपिका)

अर्थात् हृदयदेश में सञ्चरित वायु प्राण (हृदय की धड़कन) वायु है। मलद्वार से मल को बाहर निकलने वाली वायु अपान, नाभि के नीचे जठराग्नि को दीप्त कर अन्न, पान, लेह्य, चोष्य भोजन को पचाकर सभी अङ्गों में इसका सञ्चार करने वाली वायु समान, ढकार के रूप में कण्ठ (मुख) से निकलने वाली वायु उदान और बहत्तर हजार नाड़ियों में रक्त का सञ्चार करने वाली वायु व्यान नामक है। शरीर के अन्तकाल में अपना-उदान-सामनवायु एक होकर हृदयस्थ प्राणवायु में एकत्र हो जाती है। देह-धारी अर्धमूर्छित अवस्था में कण्ठ का अवरोध होकर कफ-पित्त और वायु तीनों का समान सन्निपात हो जाता है। यह दशा वैसी ही है जैसे जल में डूबता हुआ जीव अथवा अग्नि से जलता, कटता, दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति प्राण की रक्षा के लिये चारों ओर देखता है, कोई बचा ले, किन्तु श्वास-प्रश्वासपूर्ण हो जाने पर प्राण नवद्वार और नवपुरों से बाहर निकल कर दूसरे शरीर में प्रविष्ट होकर पाप अथवा पुण्य का फल भोगता है। योगी का प्राणोत्सर्ग कपालभेदन कर ऊपर से ज्योति निकल कर महाज्योति में समा जाती है। गृहस्थ शरीरधारी के प्राण का उत्क्रमण नवद्वारों—दो कान, दो आँख, दो नासिकाछिद्र, मुख, लिङ्ग-योनि, गुद इन नवद्वारों से बाहर निकल जाता है, किन्तु शिरोभाग कान से ऊपर कृकलास, धनञ्जय, हस्ति-जिह्वा, गान्धारी और सूक्ष्मानाड़ी (सुषुम्ना) में सूक्ष्म वायु ब्रह्मरन्ध्र कपाल में स्थित रहता है। शव का दाह-संस्कार कर्ता उत्तराधिकारी इसीलिये जलती चिता पर शव का कपाल क्रिया करता है। अन्यथा जलने से कपाल अपने आप फट जाता है और वायु बाहर निकल जाती है। कपालभेदन न करना शास्त्रविरुद्ध है; इसीलिये शव का संस्कार-कर्ता को कपालक्रिया अवश्य करनी चाहिये अन्यथा नरक का अधिकारी होना पड़ता है।

'पुरिशेते इति पुरुषः' नवद्वार और उपर्युक्त नवपुरियों में रहने वाली वायु के अधीन ही पुरुष है। पुरुष शब्द स्त्री-नपुंसक का भी बोधक है। पुरुषार्थ धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष यह चार हैं। पुरुषार्थी उत्तम पुरुष यथा—काल इन चार कर्मों को पूर्ण कर मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। अतः शास्त्र-

विहित शुभकर्म कर हम सभी संसाररूपी दुःखों के बन्धन से मुक्त होकर परमपद प्राप्त कर सकते हैं। एक रहस्य इस सम्बन्ध में और भी है। जिनके, प्राण का निष्क्रमण शरीर के ऊर्ध्वभाग अर्थात् नाभि से ऊपर के द्वारों—छिद्रों से निकलता है वह स्वर्ग जाते हैं, किन्तु नीचे के मल-मूत्रमार्ग से निकला हुआ प्राण नरक जाने का सूचक है। जिसकी प्रसंशा हो वह स्वर्ग, जिसके निन्दा हो वह नरक गया है, ऐसा पुत्र-पौत्रादि को समझना चाहिये। पिता के पाप को मिटाकर स्वर्ग में पहुँचाने वाले पुत्र-पौत्र ही पुत्र-पौत्र कहलाने लायक हैं, अन्यथा नहीं। इसीलिये गरुड़महापुराण में भगवान विष्णु ने गरुड़ जी से कहा है—

पुन्नाम नरकात् त्रायते इति उत्तमः पुत्रः। (गरुड़महापुराण)।

पुन्नाम के अनेक नरक हैं। इससे पिता-माता, पितामहादि का उद्धार करने वाला पितृकर्म, पिण्डदान, तीर्थाटन, कीर्तन, भागवतादिपुराण श्रवण, गयाश्राद्ध आदिकर्मों से सुपुत्र-पौत्र पितरों को तार देते हैं। यह उपदेश सभी सद्ग्रन्थों में दिया गया है।

मन्त्र की व्याख्या—मूलाधार कुण्डलिनीशक्ति चार कमलदल की होती है। इस कमल के प्रतिदल पर वं शं षं सं यह चार अक्षर होते हैं। व अमृतबीज हैं। यह चक्र ॐकार स्वरूप है। वं वं शिव के लिये कहा जाता है। आन्तरपूजन में वं अक्षर से अमृतात्मक नैवेद्य देवता को समर्पित किया जाता है। शं षं सं यह ऊष्मावर्ण हैं। जाठराग्नि की ऊष्मा (गर्मी) इन्हीं अक्षरों में सन्निहित हैं। इसीलिये आन्तर्याग में 'सं सर्वात्मकं ताम्बूलादिकं समर्पयामि' कहा जाता है। स विसर्गशक्ति है। इससे सब सृष्टि शिवब्रह्म में लीन हो जाती है। इन अक्षरों में गाढ़ा लाल रंग होता है और इस चार अक्षर स्वरूप कमलदल पर सिन्दूर के समान गणेश जी आसीन रहते हैं। वाह्य अथवा आन्तर याग में गणपति की प्रथम पूजा होती है। इसीलिये गणपति स्वरूप मूलाधार रक्तवर्ण में जगद् गुरु भगवान दत्तात्रेय जी जो शिवरूप हैं का ध्यान सभी क्रियाकलापों में करना चाहिये। यही इस प्रथममन्त्र का तात्पर्य है ॥१॥

मन्त्र–२

स्वाधिष्ठाने षड्दलपद्मे तनुलिङ्गे,
बालस्तवद्वर्णविशाले सुविशाले।

पीतंवर्णं वाक्पतिरूपं द्रुहितां तम्,
दत्तात्रेयं श्रीगुरुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि ॥२॥

व्याख्या—गुरुदत्तात्रेय ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, गणपति, सूर्य आदि रूपों में इन मन्त्रों में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, आज्ञा और विशुद्धि नामक शरीर के षड्चक्र कमलपुष्पों के विभिन्न रङ्ग रूप में आन्तर अज्ञान को ध्वंस कर महाप्रकाश-बोध को कराने वाले चराचर जगत् के गुरु शिव हैं। गुरु गौरव-ज्ञान-अज्ञान को ध्वस्त कर प्रकाशस्वरूपज्ञान के प्रदाता हैं। 'अज्ञानं गृणाति इति गुरुः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार शरीर के भीतर जन्म-जन्मान्तर के अज्ञानध्वांत को ध्वस्त कर शिष्य के हृदय में परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणियों में जिससे समस्त जगत् का व्यवहार चलता है, उन चतुर्विध वाणियों के द्वारा तत्तद् देवस्वरूप ज्ञान का उदय कराने वाले हैं। इसी लिये गुरुओं का भारत भूमि में अत्यन्त अधिक महत्त्व है। इसे सभी तत्त्वज्ञ ज्ञानी जानते हैं। तभी तो शिव ने कहा है—

गकारः सिद्धिदः प्रोक्तः रेफः पापस्य दाहकः ।
उकारः शम्भुरित्युक्तस्त्रितयात्मा गुरुः स्मृतः ।।

—(शिवप्रोक्त-गुरुगीता)

अर्थ—गुरु शब्द में गकार भगवान गणेश जी का रूप है। र अक्षर का रेफ—रकार अग्निदेव का बीज-प्राण है। गुरु शब्द का उकार साक्षात् भगवान् शिव स्वरूप है। इस प्रकार गकार, रकार और उकार मिलाकर गुरु शब्द बना है। गुरु में गणेश जी, अग्निदेवता और शिव अमङ्गल-दाहक और शान्तिकर्ता हैं। शिष्य के हृदय में कर्मों के माध्यम से परमप्रकाशक त्राण-रक्षा करने वाले मन्त्र की दीक्षा देकर शिष्य के अपने अथवा अपनों से महान् बना देते हैं। अदीक्षित पुरुष पशु के समान नरकगामी होता है। 'तस्माददीक्षितः पशुः' विना गुरु मन्त्र के मनुष्य पशुतुल्य होते हैं। भगवान परमात्मा शिव ही देवों, दानवों, मनुष्यों के परमगुरु हैं। यह ज्ञान और मन्त्र की परम्परा अनादि और अनन्त है। इसी से इस जगत् का कल्याण और व्यवहार चलता रहता है। गुरुओं के उपदेश के संग्रह से सद्ग्रन्थ भी गुरु का ही कार्य करते हैं। अतः गुरु के सम्बन्ध में श्रद्धा और विश्वास आवश्यक है। विना श्रद्धा-विश्वास के व्यक्ति नष्ट और पराजित हो जाता है। जिसने-जिसने ऐसा किया है वह नष्ट हो गये हैं। अतः गुरु की महिमा सभी शास्त्रों और

लोक में प्रतिष्ठित हैं। वैदिक संहिताओं में भारतीय प्राचीन विद्याओं का यह चिन्तन मननीय है। जैसे—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मिलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।। इति। —(शिवगीता)

इन वचनों का भाव प्रायः ऊपर वर्णित कर दिया गया है।

'दीयते ज्ञानसम्भारः क्षीयन्ते सर्वसंशयाः'।। —(तन्त्रवचन)

इस योगवचन के अनुसार जब गुरु शिष्य को मन्त्र के स्वरूप में अपने समस्तज्ञानराशि का भार शिष्य में मन्त्र दीक्षा के माध्यम से सम्पन्न कर देता है, तब उस ज्ञान के गौरव की रक्षा का भार शिष्य के ऊपर आ जाता है और शिष्य भी जब अपने शिष्य पर गुरु द्वारा दिया हुआ ज्ञान का प्रभार सौंप देता है तब वह शिष्यअनादिपरम्पा से प्राप्त ज्ञान का प्रसार करता रहता है। इस प्रकार यह ज्ञान-विज्ञान और शास्त्रों की अनादि परम्परा आज कल क्षीण हो रही है। आशा है यह भारतीय धरोहर प्राचीन शास्त्र-परम्परा को भारतीय केन्द्र तथा प्रान्तों की सरकारें चैतन्य होकर सोचेंगी और इसकी रक्षा के लिये तत्पर हो जायेंगी। अन्यथा भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता तथा अनादिज्ञान परम्परा वर्तमान शासन-प्रबन्ध को क्षमा नहीं करेंगी। अन्यथा भारतवर्ष विश्व का गुरु पुनः कैसे बन पायेगा।

महात्मा कीबरदास, तुलसीदास, वाल्मीकि, व्यास, शुकदेव, देवर्षि नारद जी की इस परम्परा की रक्षा के लिये जो उपदेश दिये गये हैं जिनमें गुरुदत्तात्रेय जी का भी वर्तमान उपदेश है, उसकी ओर लोगों का ध्यान जाना आवश्यक है।

गुरुगोविन्द दोऊ खड़े का के लागूं पांय।
बलिहारी गुरु आपनो जिन गोविन्द दियो बताय।।
ना गुरु मिला ना सिख भया लालच खेला दांव।
दोनों बूड़े धार में चढ़ि पाथर की नांव।।

जाका गुरु भी अंधला चेला खरा निरन्ध।
अन्धे अन्धा ठेलिया दोनों कूप पड़ंत।।
—(सन्त महात्मा कबीरदास)

महात्मा तुलसीदास जी तो गुरु के पदपंकजनखमणि के ज्योति का ही प्रणाम कर श्रीरामचरितमानस लिखते हैं—

वन्दौं गुरुपद पदम परागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा।।
गुरुपदपंकजनखमणि मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष विभंजन।।
यथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान।।
—(रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा—१)

ऐसे अनेक वचन गुरुपरम्परा और पारम्परिक ज्ञान की रक्षा के लिये शास्त्रों में भरे पड़े हैं। आवश्यकता है इनके रक्षण और सम्बर्धन की। इधर भी योगशास्त्रविषय की ही भाँति ध्यान देनां आवश्यक है।

मन्त्रार्थ—स्वाधिष्ठानकमलचक्र नाभि के नीचे जननेन्द्रिय से ऊपर स्थित है। यहाँ मेरुदण्ड की प्रथम गाँठ होती है। यह चक्र छः कमलदल का होता है। यह शरीर का मणिभाग है। इसीलिये इस चक्र का नाम स्वाधिष्ठान है। यहाँ सभी अक्षर अत्यन्त सूक्ष्मरूप में स्थित रहते हैं। यह योगियों से ज्ञातव्य है। यहीं पश्यन्ती नामक सूक्ष्म वाणी द्वार के चौखट पर रखे दीपशिखा की भाँति शरीर के भीतर और बाहर की ओर प्रकाश करती है। शास्त्र में इसे 'देहलीदीपकन्याय' के नाम से कहा जाता है। इस चक्र का रंग पीला तथा राजा बलि के यज्ञ में तीन पग भूमि दान के रूप में माँगने वाले भगवान वामन का यह स्वाधिष्ठानचक्र बोधक है। इस याचना पर स्वयं राक्षसराज बलि को आश्चर्य हुआ था। दानवगुरु शुक्राचार्य के मना करने पर भी बलि न मानकर तीन पग भूमि दान कर दिये। अन्त में उसी वामन भगवान ने विराटरूप धारण कर बलि समेत समस्त भुवनों का राज्य दैत्यराज बलि से लेकर इन्द्रादि देवों को दे दिया था। इस प्रकार वामन भगवान ही गुरु दत्तात्रेय के नाम से विख्यात हुये। अतः देवकार्य करने वाले गुरुदत्तात्रेय को बार-बार प्रणाम है ॥२॥

मन्त्र–३

नाभौ पद्मे पत्रदशाङ्के डफ वर्णे,
लक्ष्मीकान्तं गरुडारूढं नरवीरम्।

नीलं वर्णं निर्गुणरूपं निगमाद्यम्,
दत्तात्रेयं श्रीगुरुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि ॥३॥

व्याख्या—नाभि के नीचे जाठराग्नि को दीप्त कर अन्न पचाकर समस्त शरीर में रस के रूप में पहुँचाने वाला कमलचक्र मणिपूरनामक चक्र कहलाता है। यह कमलदल दशनील कमलदल का होता है। इस दशदलों मे ड अक्षर से लेकर फ वर्ण तक कुल ग्यारह अक्षर स्थित हैं। इन अक्षरों में साक्षात् गरुड़ पर सवार लक्ष्मी के पति भगवान विष्णु नील-निर्गुण स्वरूप में स्थित हैं। यह स्वस्वरूप वेदों का साक्षात् स्वरूप है। इस प्रकार नीलनिर्गुण गरुड़ पर सवार विष्णुस्वरूप गुरु दत्तात्रेय को प्रणाम है ॥३॥

मन्त्र-४

हृदिपद्मान्ते द्वादशपत्रे कठवर्णे,
शम्भुशेषं हं स विशेषं शमयन्तम्।
श्वेतं वर्णं पञ्चाकृतिनं कलयन्तं,
दत्तात्रेयं श्रीगुरुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि ॥४॥

व्याख्या—योगी के लिये मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपुर कमलचक्रों के बाद अनाहतकमलचक्र हृदयदेश में स्थित है। कर्णपुटों से सुनी गयी शब्द ध्वनि हृदयदेश में पहुँच कर अनाहतचक्र को जाग्रत कर देती है। यहीं शब्द एवं उसके अर्थ का भान होने लगता है। व्याकरण दर्शन में इसे ही स्फोट कहा गया है; क्योंकि यहाँ से आन्तर और बाह्यरूप से ध्वनि ध्वनित होकर शब्दार्थ का ज्ञान अस्फुटित रूप से होने लगता है। शैवशाक्त दर्शनों में इसे मध्यमावाक् कहा गया है। अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जनावृत्तियाँ शब्द के स्थूल-मध्यम और सूक्ष्म स्वरूप का ज्ञान चैतन्य व्यक्ति के वश की बात है। विलक्षण अर्थ व्यक्त करने वाली वाणी उत्तम मानी गयी है। भरतमुनि का 'नाट्यसूत्र' और महामहेश्वर श्रीअभिनवगुप्त की 'अभिनवभारती' नामक व्याख्या में इस तत्त्व का गहन विचार हुआ है। कुण्डलिनी योग का रहस्य जानने वाले मत्स्येन्द्रनाथ तथा गुरुगोरक्षनाथ इस रहस्य को जानते थे और यहीं अनाहतनाद को सुनता हुआ सिद्धयोगी हजारों वीणा की मधुरध्वनि को सुन कर अमृतानन्द में निमग्न रहता है। सभी शास्त्रों में इस विषय का गहन निरूपण है। आँख-कान-नाक, हाथ आदि से किया हुआ ध्वनिसंकेत विभिन्न अर्थों का बोध कराता है। राजदूत के भाव को दूसरे राजा

के द्वारा भेजे गये सन्देश को राजा को सुना कर दूत का भाव कैसे जाना जाय इस पर भारतवर्ष के महान् राजनीतिज्ञ चाणक्य कहते हैं—

आकरैरिङ्गितैर्गत्या श्चेष्टया भाषणेन च।
नेत्रपक्ष्मविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः।।
—(चाणक्यनीति)

अर्थात् राजदूत अथवा किसी भी व्यक्ति के मुख आकृति, बार-बार उसकी चेष्टा, किसी वस्तु को बार-बार देखना, वाणी के ध्वनि (स्वर) से और आँखों के इधर-उधर संचालन से राजनीतिज्ञ व्यक्ति को राजदूत अथवा किसी भी व्यक्ति के मन का भाव राजा अथवा विशेषज्ञ जान लेता है।

शैवागम तथा तन्त्रों में मन्त्र का विलक्षण फल के ज्ञान के लिये शब्दात्मक ध्वनि का सूक्ष्म निरूपण हुआ है। प्रतिभा विशिष्टज्ञान को कहा जाता है। इसका लक्षण यह है—

स्वभावचरणाभ्यासयोगाऽदृष्टोपपादितताम् ।
विशिष्टोपहिताञ्चैव प्रतिभां षड्विधो विदुः।।
—(आगमवचन)

व्यक्ति की उत्तम-मध्यम-मन्दज्ञान के द्वारा उसकी प्रतिभा (विलक्षण ज्ञान) का बोध होता है। 'भावनानुगमादेव प्रतिभा इति आगमविमर्शः।' इस प्रकार व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त भावनात्मक शब्द का मुख्यतः चार प्रकार इस प्रकार हैं—

१. ध्वनतीति ध्वनिः इति शब्दः, व्यञ्जकः।

अर्थात् व्यक्ति के मुख से ऊँचे, मृदु, निम्न, स्निग्ध, रुक्ष, भयभीत, स्थिर आदि ध्वन्यात्मक शब्दों को सुन कर व्यक्ति के सही बनावटी आदि भावों का बोध होना ही ध्वनि है। यह व्यञ्जना प्रधान है। जैसे एक व्यक्ति से दूसरा व्यक्ति यह कहे कि 'भाई साम हो गई है', इस एक वाक्य का अर्थ विद्यार्थी, श्रमिक, चोर, सभा, कार्यक्रम आदि में सम्मिलित होने वाले, कामी व्यक्ति कामिनी से मिलने आदि का विभिन्न अर्थ होता है। अतः ऐसे शब्द व्यञ्जक होते हैं।

२. ध्वनतीति ध्वनिः।

यह शब्द अभिधावृत्ति में है। सीधे शब्द से सीधा अर्थ जैसे— राजधानी, घर, कार्यालय, विद्यालय, भोजन, कार्य आदि के लिये सीधे-साधे

शब्द का प्रयोग करना। शासनादेश, विधि-व्यवस्था, निर्णय आदि इसी अभिधाशब्दशक्ति में आते हैं।

३. ध्वन्यतेऽनेन इति ध्वनिः ।

यह व्याख्या उत्तम से भी उत्तम शब्द के भाव, कार्य को सफलतापूर्वक सम्पादित करने वाली कहलाती है। यह सर्वोत्तम ध्वनि है। चुटुकी लेना, हास-परिहार, मजाक, व्यङ्ग, अन्योक्ति आदि वाक्य तथा जिस काव्य, नाट्य, भाषण को सुन कर व्यक्ति मुग्ध हो जाय वह ध्वनि (व्यञ्जना) प्रधान रचना, कविता, लेखन, भाषण आदि कहलाती है।

४. ध्वनतेऽसौ इति ध्वनिः ।

जिससे किसी व्यक्ति-वस्तु-समाज आदि का सम्पूर्ण स्वरूप अथवा एक अंश का ही बोध हो उसे ध्वनि कहा जाता है, वह ध्वनि काव्य, ग्रन्थ, प्रवचन, कथन आदि मन्द-मध्य और उत्तम काव्य माने जाते हैं। महाकवि कालिदास, महर्षि व्यास, वाल्मीकि, तुलसी-कबीर-सूर, उलटवांसी, छायावाद आदि इसी विधा के अन्तर्गत आते हैं। सभी महापुरुष तथा स्पष्ट वक्ता महात्मा कबीर कहते हैं—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा पण्डित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पण्डित होय।।
ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय।
तन मन सब निर्मल करे आपहु शीतल होय।।
कबीरदास की उलटी बानी। बरसै कम्बल भींगे पानी।।

—(कबीरदास)

महाकवि रहीम खानखाना कहते हैं—

रहिमन चुप हो बैठिये देखि दिनन्ह का फेर।
जब नीके दिन आइहैं बनत न लगिहें देर।। इत्यादि।

अनाहतचक्र हृदयस्थ कमल बारह दल का होता है। इन दलों में प्रत्येक दल पर क-ख-ग-घ-ङ-च-छ-ज-झ-ञ-ट-ठ यह कुल बारह अक्षर होते हैं। प्रत्येक अक्षर जैसे क से जल आदि की उत्पत्ति हुई है। इस कमलदल पर माता पार्वती सहित भगवान शिव निवास करते हैं। इसे ही 'सोऽहं' तत्त्व कहा जाता है। स श्वाँस लेना और ह श्वाँस छोड़ना है। सकार

शक्ति और हकार शिव हैं। इस भाव से श्वाँस-प्रश्वाँस में शिव, राम, कृष्ण, दुर्गा आदि का अजपा जप होता रहता है। यह मूलचक्र का प्रत्येक दल शुभ्र-श्वेत कमल के समान है। इन कमल दलों पर तत्पुरुष, ईशान, अघोर, सद्योजात, वामदेव तथा ऊपर ऊर्ध्वमुख यह पाँच मुख शिव के स्थित हैं। शिव इन मुखों से ज्ञानामृत की अजस्रधारा गङ्गा की धारा के समान निकालते रहते हैं। अतः इस कमलदल के सम्पूर्ण रहस्य को जानने वाले शिवयोगी गुरु दत्तात्रेय जी के पावन चरणों में अनन्त प्रणाम है ॥४॥

मन्त्र–५

आज्ञाचक्रे भृकुटि स्थाने द्विदलान्ते,
हं लं बीजं ज्ञानमधीशं रविमूर्तिम्।
तेजोऽऽगरे अश्वारूढ़े श्रीसूर्यम्,
दत्तात्रेयं श्रीगुरुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि ॥५॥

व्याख्या—शरीर में पञ्चमकमल दल का नाम 'आज्ञाचक्र' है। यहीं से समस्त जगत् का सञ्चालन होता है। शरीर के वामभाग के वामनासिका छिद्र में इडानामक नाडी से मूलाधारचक्र तक श्वासवायु प्रविष्ट होती है। प्राणायामक्रिया में उसी मूलाधार से दाहिने नासिकाछिद्र से प्राण-वायु पिङ्गला नाडी से बाहर आती है। वामभाग में स्थित इडानाड़ी मातृसत्ता अमृतचन्द्रमा का बोधक रजरूप है। दाहिने भाग में स्थित पिङ्गलानाड़ी पितृसत्तावीर्य का प्रतीक है। दोनों के बीच आज्ञा चक्र में इन दोनों नाड़ियों को गूँथकर सुषुम्ना नाड़ी सर्वत्र चक्रों में स्थित है। यह प्रकाशात्मक भगवान् सूर्य रूप है जो सातरंग के सात घोड़ों से जुते रथ पर जगत् को प्रकाशित करने वाले सूर्य तथा शिव के ज्ञानमय तीसरे नेत्र के रूप में प्रतिष्ठित हैं। नाडियों के आरोह अवरोह द्वारा श्वसन क्रिया से जीव जीवित रहता है। रज-वीर्य माता के योनिरूपक्षेत्र में सम्मिलित होकर इसी सूर्य रूपी अग्नि से शीत (रज), अत्यन्त उष्म वीर्य के बीच में शीत-ताप को सन्तुलित कर माता के गर्भ में मानवपिण्ड दश मास में पल-बढ़ कर रेचन नामक तीव्रवायु से धकेल कर गर्भ का बालक-बालिका के रूप में यह शरीरपिण्ड शिशु के रूप में बाहर आ जाता है। जो तेजतत्त्व गर्भस्थ शिशु देख रहा था वह माता के गर्भ से बाहर आते ही भूल जाता है। शिशु को नींद में वह तेज दिखाई देता है तो शिशु हंसता है तथा नहीं दिखने पर रोता दिखाई पड़ता है। यह योगविज्ञान की धारणा है। आज विपरीत काल में कुछ लोग माता-पिता के साथ

परमप्रकाश को भूल कर अपमानित करते देखें जाते हैं। ऐसे लोगों के लिये इनके कल्याणमार्ग नहीं हैं। इस भृगुटिस्थान ललाट पर स्थित हं लं वर्ण आकाश से मूतलतत्त्व तक का यह आज्ञाचक्र प्रसृत है। अतः सप्त अश्वों के रथ पर आरूढ़ भगवान आदित्य-स्वरूप इस ज्ञानभाष्कर स्वरूप के तत्त्ववेत्ता सर्वगुरु दत्तात्रेय जी के पावन पादपद्मों में प्रणाम है ॥५॥

मन्त्र–६

ब्रह्मानन्दं ब्रह्ममुकुन्दं भगवन्तम्,
सत्यं ज्ञानं भूममयं तं भजरूपम्।
पूर्णं शंान्तानन्दमयं तं निजमूर्तिं,
दत्तात्रेयं श्रीगुरुमूर्तिं प्रणतोऽस्मि ॥६॥

व्याख्या—इस आज्ञाचक्र से ऊपर तालुमूल में घण्टिका से ऊपर विशुद्धिचक्र और उससे ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में एक हजार पीतकमलदलों वाला सहस्रारचक्र शिर के मध्य स्थित है। ऊपर इसका विवेचन हो चुका है तथापि प्रसङ्गवश यहाँ सङ्क्षेप में यही तात्पर्य है कि इन कमलदलों में सम्पूर्ण ज्ञान-योग, वर्ण, जगत् आदि शिवशक्तिसामरस्य स्वराज्य में मणिमयद्वीप के सुवर्ण पलंग पर स्थित हैं। यह सम्पूर्णता की स्थिति है। यहाँ पहुँचा हुआ योगी, ज्ञानी, फकीर कभी पुनः जन्म-मृत्यु के बन्धन में नहीं बँधता। यहाँ महातेज-प्रकाश की प्राप्ति ही ब्रह्मानन्द मुकुन्द श्रीकृष्णस्वरूप है। यही भगवान सत्य-ज्ञान और आनन्द स्वरूप में तेजोमय स्थित हैं। इसे ही गीता ने 'यत्र गत्त्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' तथा मृत्युकाल में भगवान आदि शङ्कराचार्य ने कहा है—

भज गोविन्दं भज गोविन्दं,
गोविन्दं भज मूढ़मते ।। इत्यादि।

ऐसे शान्त और आनन्द की पराकाष्ठा वाले 'सत्यं शिवं सुन्दरं' तत्त्ववेत्ता गुरु दत्तात्रेय के आनन्दस्वरूप चरणकमलों का नित्य चिन्तन एवं नमन है ॥६॥

सरयू नदी का इतिहास

माता सरयूनदी के अयोध्या आगमन के सम्बन्ध श्रीराम का प्रश्न तथा गुरु वसिष्ठ जी का उत्तर। —(वाल्मीकिरामायण-बालकाण्ड)

मन्त्र-१

ततार सरितं पुण्यां सरयूसागरं गमाम्।
राघवस्तु सरिन्मध्ये पप्रक्ष मुनिपुङ्गवम् ॥१॥

व्याख्या—राज्य पर अभिषिक्त हो जाने पर एक दिन श्रीराम, भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न जी गुरु वशिष्ठ जी को साथ लेकर प्रात:कालीन स्नान करने सरयू नदी के पावन तट पर गये। सरयूनदी पुण्य प्रदान करने वाली तथा गङ्गा जी के साथ मिलकर सागर में मिल जाती हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी अन्तिम जनपद बलिया में महर्षि भृगु जी के आश्रम के सामने दोनों का सङ्गम होता है। इस संगम पर प्रतिवर्ष कार्तिकमास भर गौवों का मेला लगता है। भारी खरीद-फरोख्त कृषक तथा व्यापारी करते हैं। सङ्गमस्नान, भृगुमहर्षि का यह स्थान अत्यन्त पावन और उर्वर है। मास भर कथा, कीर्तन, भजन, भण्डारा, सतुवा-भूजा, दही-चिऊरा यहाँ खूब बिकता तथा खाया जाता है।

जब श्रीराम चारों भाई सहित सरयू माता की धार के बीच में गये तब वसिष्ठ गुरु से यह प्रश्न किये कि हे गुरो! सबको तार देने वाली माता सरयू जी कहाँ से उत्पन्न होकर कहाँ गङ्गा जी से सङ्गम कर मेरे पूर्वजों द्वारा देवलोक से लाई गई हैं। गङ्गा जी सरयू सहित कैसे गङ्गा सागर में मिल जाती हैं। यत: विशाल सागर का निर्माण श्रीराम के पूर्व वंशज राजा सगर के साठि हजार पुत्रों ने अपने नख से खोद कर गङ्गासागर में कपिल मुनि के आश्रम के समीप देवराज इन्द्र द्वारा अश्वमेध के श्यामकर्ण घोड़े को देख कर सगरपुत्रों के अपमान से क्रुद्ध होकर कपिलमुनि ने सभी सगर चक्रवर्ती राजा के पुत्रों को भस्म कर दिया था। पितरों को गङ्गाजल से तर्पण कर तारने के लिये राजा सगर के द्वितीय पुत्र अंशुमान और अंशुमान के पुत्र असमंजस ने देवलोक से गङ्गाजी को लाने के लिये घोर तप किया, किन्तु ब्रह्मा-विष्णु और भगवान् शिव को स्वर्ग से उतार कर अयोध्या पति के पुत्रों का उद्धार न कर सके। अन्त में अश्वमेधयज्ञ की दीक्षा लिये राजा सगर यज्ञवेदी पर बैठे रह गये। पुन: अन्त में अंशुमान के पुत्र महातपस्वी राजा सत्यवादी हरिश्चन्द्र ने सबको तप द्वारा प्रसन्न कर शिव की जटा में उलझी माता गङ्गा को पुत्र राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र राजा भगीरथ ने भारतवर्ष की भूमि पर गङ्गा जी को उतार कर अपने पूर्व पितरों का उद्धार किया था। तब से

गङ्गां जी का दूसरा नाम भागीरथी पड़ा। जह्नुऋषि द्वारा शुकताल स्थान के पहले मुजफ्फर नगर में गङ्गा जी को पी लेने पर पुनः महाराज हरिश्चन्द्र उन्हें प्रसन्न कर सकुशल कानपुर, प्रयाग, काशी, पाटलीपुत्र से होकर पश्चिम बङ्गाल के हुगली जनपद के दक्षिण क्षोर पर गङ्गासागर ले जाकर पितरों को तार दिये थे। अतः गङ्गाजी का एक नाम जाह्नवी भी हो गया। श्रीराम द्वारा वसिष्ठ जी से 'सरयूसागरंगमा' ऐसा प्रश्न पूछने का एक तात्पर्य अपने पूर्वजों द्वारा गङ्गा जी को लाने के सम्बन्ध में यह भी जानने की इच्छा थी। इसी तात्पर्य को महर्षि वाल्मीकि ने रामायण के बालकाण्ड में लिखा है। भारतवर्ष के उत्तर भाग आर्यावर्त के महत्त्व में गङ्गा जी का यहाँ आना एक अमूल्य रत्न जड़ा हुआ है। इस पर महर्षि व्यास ने ऐसा लिखा है।

हिमालयाच्छैलराजात् गङ्गासागरसङ्गमः।
देशः परमपुण्योऽसौ यत्परो नेव वर्तते।।

—(महाभारत)

अर्थात् नगाधिराज हिमालय से गङ्गासागर तक की पुण्यभूमि के समान इस पृथ्वी पर दूसरा धन्य भूभाग नहीं है। भगवान आदि शङ्कराचार्य भी महाराजा भगीरथ द्वारा अपने विशालरथ के दोनों पहियों की बीच में पीछे-पीछे गङ्गा जी को उत्तालतरङ्गों में गम्-गम् लहराती लहरों से लाने से गङ्गा ऐसा नाम सार्थक हुआ है।

यतो भगीरथो गङ्गा स्वर्गात्त्वामिहानयत्।
अतस्त्वां मुनिभिः सर्वैर्गङ्गेति परिकीर्त्यते।।

—(शङ्कराचार्य/१)

मन्त्र–२

वारीणां विद्यमानानां किमेष विमलो ध्वनिः।
राघवस्तु तच्छ्रुत्वा जातकौतुहलः स च।।२।।

व्याख्या—राजधानी अयोध्या के उत्तरतट पर अत्यन्त विमल, धवल, निर्मल मोती के समान उज्ज्वल जलधारा वाली सरयू जी में सर-सर ध्वनि सुनकर महाराज श्री रामचन्द्र के मन में यह कौतुहल हुआ कि मैंने जीवन में अनेक नंद-नदियों में स्नान किया है, किन्तु इतना निर्मल और सरसर करती हुई सरयू की ध्वनि के समान शीतल-मन्द-सुगन्ध-सुस्वादु जल अन्यत्र नहीं

देखा है। अत: हे ऋषिराज! हे तत्त्वज्ञ वसिष्ठजी! मेरी जिज्ञासा को अपने ज्ञान के प्रकाश से शान्त कर दीजिये ॥२॥

मन्त्र–३

कथयामास धर्मात्मा तस्य शब्दस्य निश्चयम् ।
कैलासे पर्वते राम मनसा निर्मितं सरः ॥३॥

व्याख्या—श्रीराम के सरयू नदी के रहस्य को जानने के लिये आश्चर्यपूर्वक जिज्ञासा को शान्त करते हुये गुरु महर्षि वसिष्ठ ने कहा—हे राम ! सृष्टिप्रारम्भ के पूर्व प्रजापिता ब्रह्मा जी ने भगवान शिव को प्रसन्न कर शक्ति प्राप्त करने के लिये हिमालय पर्वत के सर्वोच्च शिखर कैलास पर्वत पर अपने मन से एक रमणीक सरोवर उत्पन्न करके उसमें मत्स्य, सर्प तथा उसमें नाना रंग-रूप के कमलपुष्प उत्पन्न किया। उस सरोवर में नाना प्रकार के मत्स्य आदि उत्पन्न कर श्वेतहंसों का जोड़ा उत्पन्न किया। हंसों का जोड़ा दूध में मिश्रित जल को अलग कर मात्र दूंध का ही पान करते हैं। यहाँ से ब्रह्मकमल कभी-कभी पण्डा लोग मंगाकर केदारनाथ भगवान पर चढ़ाने के लिये देते हैं। भगवान शिव पर चढ़ा कमलपुष्प कतिपय भक्त प्रसाद के रूप में अपने साथ ले जाते हैं। मुझे भी यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

ब्रह्मा जी के दक्षिण-वाम वक्षस्थल (हृदय) से उत्पन्न मनु नामक पुत्र और शतरूपा नामक कन्या का परस्पर विवाह कर सृष्टि के विस्तार के लिये ब्रह्मा जी ने आदेश दिया। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर आदि राजा मनु ने अयोध्या को अपनी राजधानी बनाकर अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। उस समय अयोध्या में कोई नदीं नहीं बहती थी। अत: मनु जी ने महर्षि वसिष्ठ जी की आज्ञा से अपनी धनुष उठाकर प्रत्यञ्चा चढ़ा उत्तर दिशा की ओर बाण चलाया। मनु जी का यह बाण हिमालय को वेधकर ब्रह्मसरोवर से जल निकाल कर कई धाराओं में ब्रह्मसरोवर की ही जल की धारायें निकल कर उसकी एक धारा अयोध्या आई, आगे गङ्गा में मिल गई। मनुसहित सभी अयोध्या के अधिपति सभी अश्वमेध तथा अन्य यज्ञ सरयू के पवित्र जल से ही करते आये हैं। इस सरस्वती नदी की विभिन्न धारायें उत्तर भारत और कश्मीर सहित पंजाब, मध्यप्रदेश, राजस्थान सहित भारवर्ष में कहीं अन्त:सलिला कहीं प्रकट रूपसे आज भी बहती हैं। सिन्धु नदी जो भारतवर्ष

और वर्तमान पाकिस्तान के बीच बहती है। इसी नदी के दोनों तटों पर सिन्धुघाटी बसी थी। मोहनजोदड़ों और सिन्धु के उत्खनन में इसके स्पष्ट प्रमाण प्राप्त हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र में इसका प्रमाण देखने योग्य है—

इमं मे गङ्गे! यमुने! सरस्वति! शुतद्रि! स्तोमं सचता। परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे! वितस्तयार्जिक्ये! शृणुह्या सुषोमया।।

—(ऋग्वेद-१०/७५/५)

इसका अर्थ यह है कि ऋषि कहते हैं कि मैं इस भारतवर्ष के पुण्यजलधारा जो गङ्गा, यमुना, सरस्वती, सतलज, इरावती आदि धाराओं की स्तुति करता हूँ। आगे ऋषि कहते हैं कि आसिक्नी-चिनाव, मरुद्वृथा-मरुस्थल को सींचने वाली झेलम, आर्जिकीया-उर्जावाली पंचनदनदी (पञ्जाब), सुषोमा-सोमनदी गुजरात। यहीं की एक धारा प्रयागराज त्रिवेणी सङ्गम में गङ्गा-यमुना के साथ सरस्वती नदी की अन्तःसलिला अमृतजलवाली धारा नीचे से बहती हुई सङ्गमस्नान में मिलती है। स्नान के समय पैरों के नीचे इस धारा का अनुभव स्पष्ट होता है, मैं इन्हें प्रणाम करता हूँ।।२।।

मन्त्र–३

कथयामास धर्मात्मा तस्य शब्दस्य निश्चयम्।
कैलासे पर्वते राम मनसा निर्मितं सरः।।३।।

व्याख्या—धर्मात्मा वसिष्ठऋषि ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के प्रश्न का समाधान करते हुये बताया कि हे पुरुषोत्तम श्रीराम! माता सरयू जी के विमल जल में यह जो सर-सर की अत्यन्त मधुर ध्वनि हो रही है इसको सृष्टि के आदि में कैलासाचल के शिखर पर सर्वप्रथम भगवान् शिव-पार्वती के विहार और स्नान के लिये ही उत्फुल्लकमलों के पुष्प और हंस जोड़ों का विहार करने के लिये ब्रह्मा जी ने अपने मन से ब्रह्मसरोवर का निर्माण किया है। पुनः राजा मनु जी ने अपने अमोघ-अचूक बाण से इसी हिमालय पर्वत के सर्वोच्च शिखर को वेधकर जो जलधारा निकाला था वही ब्रह्म-सरोवर से नीचे पृथ्वी पर सर-सर सरकती मधुर निर्मल जल धारावाली यह पुण्यसलिला शीतल जल वाली माता सरयू की जलधारा की ही यह मधुरध्वनि सुनाई दे रही है। यहाँ एक रहस्य और भी है। इसी ब्रह्मसरोवर में विचरण करने वाला एक हंस का जोड़ा भगवान शिव के हिमलिङ्ग कश्मीर प्रान्त के भगवान अमरनाथ जी के इसी स्थल पर कश्मीर की गुफा में रहता है। यह

जोड़ा वर्षभर लुक-छिप कर रहते हुये कभी-कभी पुण्यात्मा तीर्थयात्रियों को भी दिखाई देते हैं, जो ब्रह्माजी द्वारा ही उत्पन्न हैं। एक रहस्य और भी है इसी दुर्गम अमरनाथ मार्ग में एक गुफा में श्रीरामभक्त श्रीहनुमान् जी भी समाधि लगाये भी कभी-कभी किन्हीं भक्तों को दिखाई दे जाते हैं ॥३॥

मन्त्र–४

ब्रह्मणा रघुशार्दूल मानसं निर्मितं सरः।
तस्मात्प्रसूता सरयूः साऽयोध्यामभ्यभावयत् ॥४॥

व्याख्या—महर्षि वसिष्ठ ने आगे बताया कि हे रघु के वंश के नृपेन्द्र राम ! जिस अद्भुत ब्रह्मसरोवर का मनसा निर्माण भगवान् ब्रह्मा जी ने किया है वहीं से चलकर हिमालय के शिखरों से धारा बनाकर वह मुख्य सरस्वती नदी की धारा मानसरोवर से निकली सरयू मैया यहाँ अयोध्या के उत्तर तट पर लहरा रही हैं। यहाँ उत्तम सरयू स्नान-ध्यान करने वाले साधु सन्त तथा समान्य भक्तों की सभी मनोकामनायें सरयू जी पूर्ण कर देती हैं।

यहाँ एक बात और हमने देखा है। यहाँ स्नान करने वाले साधु-सन्त प्रायः सन्ध्या तथा गायत्री जप न कर अपने-अपने पन्थ-सम्प्रदाय के अनुसार तिलक-चन्दन लगाकर ध्यानस्थ हो श्रीराम नाम महामन्त्र का ही जप करते हैं। त्रिवर्ण को सन्ध्या-गायत्री आवश्यक है। तब नित्यकर्म का उल्लङ्घन वेद के नियम के विरुद्ध है। पुनः मैंने अपने मन में गायत्रीमन्त्र के अर्थ का अनुसन्धान किया। गायत्रीमन्त्र का प्रयोग प्रायः तीन अर्थों में किया गया है। वह यह है—'यद् गीयते तद् गायत्री', 'गायन्तं त्रायते इति गायत्री', 'गच्छति इति गायत्री'। इस प्रकार ऋषियों ने जिस वेदमाता गायत्री को समाधि में देखा और मुनियों ने गायत्रीमन्त्र का मनन किया। पुनः विद्वानों-पण्डितों ने उसे गाया-जपा। इस प्रकार गायत्री तीनों व्याहृतियों के साथ सर्वकल्याणकारी हैं। यही अर्थ प्रायः 'गायन्तं त्रायते इति गायत्री' का भी है। 'गच्छति इति गायत्री' इस व्याख्या में 'मम्-गति ज्ञाने च' इस पाणिनि धातुपाठ के अनुसार गम धातु गति तथा ज्ञान का बोधक है। गङ्गा और 'सृञ्-सरणे' इन दोनों धातुओं से गङ्गा-सरयू में गत्यर्थक तथा ज्ञानार्थक 'गम्' 'सृञ्' धातुवें ही हैं। अतः सरयू स्नान और गायत्री के भर्ग-धी इन दोनों शब्दों के अर्थों के अपने में समेटे हुए श्रीरामनाम स्वयं गायत्री स्वरूप है। इसी लिये भगवान शिव अनवरत रामनाम जपते रहते हैं। सूर्य के दिनरात्रि के सन्धिकाल को

सन्ध्याकाल कहा जाता है। शास्त्रनिर्दिष्ट प्रातःसायं का सन्धिकाल ढाई घड़ी अर्थात् एक घण्टा का तथा मध्याह्न का सन्धिकाल एक घड़ी प्रायः बारह मिनट का होता है। यह काल विज्ञान के अनुसार अद्भुत पुण्यकाल शास्त्रों में माना गया है। इस काल की अनेक व्याख्याओं में एक व्याख्या "धीयते-अनुसन्धीयते परब्रह्म यस्मिन्काले सा सन्ध्या' है। अर्थात् जिस पवित्रतम काल में परब्रह्म परमात्मा के प्रकाश (तेज) धी-प्रकाश का ध्यान-चिन्तन किया जाय वह भी सन्ध्या कर्म है। अयोध्या के साधु सन्त उसी अभिराम-शीतल-सुन्दर-श्रीरामनाम का जप करते रहते हैं। अतः यह भी विचार की दृष्टि से एक प्रकार की सन्ध्या ही है ।।४।।

मन्त्र–५

शब्दोऽयं विपुलस्तस्याः पुण्यं ब्रह्मसरश्च्युतः।
वारिसंधर्षजो राम! प्रणामं प्रयतः कुरु ।।५।।

व्याख्या—आगे गुरु वसिष्ठ ने कहा कि हे राम! मैया सरयू के एक तरंग से दूसरे तरंग (लहरों) से टकराने पर यह मधुर घर्घर (घाघरा) शब्द हो रहा है। यह आपके परमपितामह राजा मनु के द्वारा ब्रह्मसरोवर भेदकर लाई गयीं हैं। अतः हे मर्यादापुरुषोत्तम! भाइयों तथा मन्त्री आदि के साथ इनका प्रणाम विशेष श्रद्धा के साथ करें ।।५।।

श्री अयोध्या-धाम की महिमा

अयोध्या नगरी का शाब्दिक अर्थ है कि 'न योद्धुं योग्या साऽयोध्या' अर्थात् जिस नगरी के प्रशासकों, राजाओं, नरेन्द्रों से आज तक कोई युद्ध न कर सका हो अथवा युद्ध जीत न पाया हो, उस दुर्धर्ष नगरी का नाम अयोध्या है। जब तक सूर्यवंशीय राजाओं का अयोध्या में राज्य रहा है तक तक यहाँ कोई आक्रमण नहीं हुआ है। अवध ही क्या? सम्पूर्ण भारतवर्ष पर कोई न तो आक्रमण ही हुआ और कहीं जो हुआ भी तो वह पराजित होकर भाग गया अथवा मारा गया। अतः तीर्थों में प्रथमनाम अयोध्या का लिया गया है—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ।।

—(महाभारत)

इसकी विशद व्याख्या पहले की जा चुकी है। योगवासिष्ठ के अनुसार भारतवर्ष का हृदय अयोध्या और शिर काशी है। अतः श्रीराम ने गुरु वसिष्ठ से यह कहा था—

मेध्या महर्षिचरितैरचिताऽयोध्या,
अयोध्येति विश्वविजिता मनुराजधानी।
यत्रोच्छलन्ति कलिकालमलाभिसङ्गान्;
निर्वाणरङ्गचतुराः सरयू तरङ्गाः ।।

—(योगवासिष्ठ)

व्याख्या—अत्यन्त मेधा (बुद्धि-प्रतिभा वाले) राजर्षियों द्वारा स्थापित और सम्पूर्ण विश्व का शासन-प्रशासन करने वाली अयोध्या नगरी दिव्य राजवंश के निर्मल आचरण से युक्त रही है। यह आदि नगरी विश्व के प्रथम सम्राट महाराज मनु की राजधानी रही है। यह राज्य प्रजा को उत्तम सुख भोग और स्वर्ग-अपवर्ग देने वाली प्राचीन नगरी है। इस नगरी के पैर का प्रक्षालन करने वाली ब्रह्मसरोवर से निकली सरयू उत्तर तट पर विमल-धवल जलधार से लहरों से लहराती हुई बहती रही हैं। यह पुण्यसलिला सरयू नदी कलिकाल के महान् पातकों उपपातकों का सर्वथा नाश करने वाली हैं। राजा राम जैसे अभूतपूर्व प्रजापालक राजा इसी नदी के तट से जगत् प्रसिद्ध ग्यारह हजार एक सौ ग्यारह (११,१११) वर्षों तक राज्य कर वैकुण्ठलोक में प्रजासहित सशरीर गये थे। समस्त राक्षस, दानव, आततायियों का समूल विनाश कर देवासुर संग्राम में इन्द्र को स्वर्ग का राज्य दे महाराज मुचुकुन्द की कथा श्रीमद्भागवतपुराण में भी आई है। यदुवंशी भगवान श्रीकृष्ण ने अपने से अवध्य कालयवन नामक दुराचारी राजा को पूर्व अवध नरेश मुचुकुन्द को घोर निद्रा से जगाकर उनके नेत्रों के तेज से भस्म करा दिया था। इसीलिये संग्राम से कभी नहीं भागने वाले त्रेतायुग के श्रीराम द्वापरयुग में श्रीकृष्ण के रूप में कालयवन से भयभीत होकर भागने के कारण रणछोर नाम से भी कहे गये। श्रीराम मर्यादा और श्रीकृष्ण श्रीविष्णु के लीलावतार हैं। श्रीराम धनुषबाण तथा श्रीकृष्ण बाँस की मुरली धारण करने वाले हैं। कहा जाता है कि भगवती सीता जब गर्भवती थीं तब एक धोबी के ताना मारने पर श्रीराम ने सती सीता का त्याग कर दिया था। त्याग एक व्यक्ति

के व्यङ्ग्य पर हुआ। अतः सीता ने अयोध्या का श्रीहीन होने का शाप दे दिया। इस कारण भीतर से सुस्थिर और समृद्ध होती हुई भी अयोध्या बाहर से खण्डहर के रूप में ही दिखती है।

ग्रहों का परिचय

विश्व और जीवों पर ग्रहों का प्रभाव तथा फल

ग्रह-गृह-ग्रहण इन सभी शब्दों का अर्थहोता है ग्रहण कर लेना अथवा पकड़ लेना। नवग्रहों के स्वामी भगवान सूर्य विवस्वान् हैं। सूर्य नारायण की उत्पत्ति नारायण के तेज से हुई है। 'गृह्णाति इति गृहं, ग्रहणं, ग्रहो वा' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो ग्रहण कर ले वह ग्रह तथा गृहिणी है। गृहिणी पत्नी को कहते हैं। वह घर की लक्ष्मी होती है। वेद में सूर्य के कई मन्त्र हैं। सूर्य ब्रह्मा जी के मानसपुत्र और महाराज मनु के पिता हैं। सूर्य योगी, विजयप्रद, सभी रोगों को दूर करने वाले सभी देव-पिरों के निवासस्थल, वंशवृद्धि करने वाले महान तत्त्ववेत्ता हैं। अवध्य रावण पर महर्षि अगस्त्य के उपदेश से वाल्मीकि रामायण में लिखा 'आदित्यहृदयस्तोत्र' का तीन बार पाठ कर श्रीराम रावण का वध कर सके थे। सूर्यार्घ्य और सूर्यनारायण के प्रणाम से ही प्रसन्न हो जाते हैं। गायत्री-सावित्री इनकी दो शक्तियाँ हैं। अरुण सारथी, कालचक्र रथ और सातरंगों के सात घोड़े इस काचक्र रथ को वायुवेग से खींचने वाले हैं। सूर्यपुत्र शनिग्रह तथा वानरराज सुग्रीव, महावीर दानी कर्ण आदि पुत्र और कालचक्ररूपी रथ के सामने सूर्य के सम्मुख पीछे चलते हुये वेद-वेदाङ्गसहित सभी ज्ञान अर्जित करने वाले सूर्य के परम प्रिय शिष्य महावीर हनुमान् जी हैं। इसके अतिरिक्त भी भगवान भास्कर की अनन्त गाथायें हैं, जिन्हें 'सूर्यपुराण' से जाना जा सकता है।

ग्रहों की स्थिति एवं इनसे सृष्टि के रूप में स्वामी भगवान वामन, श्रीराम, श्रीकृष्ण सहित सभी जगतप्रपञ्च के महाज्योतिर्विज्ञान के वेत्ता भगवान् वेद-व्यास जी के पिता महर्षि पराशर हैं। इनकी अमूल्य ज्योतिष-विद्या की मुख्य रचना "पराशरस्मृतिसंहिता' है। इस संहिता में अधोलिखित श्लोक यह हैं—

रामोऽवतारः सूर्यस्य चन्द्रस्य यदुनायकः ।
नृसिंहो भूमिपुत्रस्य बुधः सोमो सुतस्य च ।।१।।
वामनो विबुधेज्यस्य भार्गवो भार्गवस्य च ।
कूर्मो भार्गवपुत्रस्य सैंहिकेयस्य शूकरः ।।२।।
केतोर्मीनावतारस्य ये चान्येऽपि खेटजाः ।
परमात्मांशोऽधिको येषु ते सर्वे खेटजा स्मृताः ।।३।।
जीवांशोऽधिको येषु जीवास्ते प्रकीर्तिताः ।
सूर्यादिभ्यो ग्रहेभ्यश्च परमांशो विनिःसृतः ।।४।।
रामकृष्णादयः सर्वे ह्यवतारा भवन्ति वै ।
तत्रैवेते विलायन्ते पुनः कार्योत्तरे सदा ।।५।।
आदित्योऽऽदिभूतत्त्वाद् ब्रह्मावेदपठन्नभूत् ।।६।।

—(ऋषिपराशर स्मृति से उद्धृत)

व्याख्या—श्रीरामसहित सूर्यवंश के प्रथम प्रवर्तक भगवान आदित्य सूर्य हैं। चन्द्रवंश के प्रवर्तक भगवान चन्द्र हैं। इस चन्द्रवंश में ययाति, संर्याति, पुरु, जड़भरत, दुष्यन्त सहित महाराज यदु के पुत्र श्रीवसुदेव और उनके पुत्र श्री बलराम और श्रीकृष्णचन्द्र हैं। भगवान नृसिंह ग्रहों के सेनापति भूमि के पुत्र हैं। बुद्धि और व्यापार के देवताग्रह भगवान चन्द्रमा के पुत्र बुध और पीतवर्ण वामन भगवान देवों के गुरु बृहस्पति के पुत्र हैं और महर्षि भृगु के पुत्र दानवों के गुरु शुक्राचार्य (शुक्रग्रह) हैं। शुक्राचार्य के पुत्र भगवान विष्णु के अवतार ही कूर्म भगवान कच्छप हैं। इन्हीं के पीठ पर मन्दराचल पर्वत रख कर तथा भगवान शेषनाग को समुद्रमन्थन की रस्सी बना कर देवों और असुरों ने समुद्रमन्थन किया था। राहु ग्रह के पुत्र राक्षसराज हिरण्याक्ष का वध करने वाले भगवान वाराह हैं। क्रूरग्रह केतु के पुत्र वेदों की पुनः रक्षा करने वाले भगवान मत्स्य ही विष्णु मीनावतार हैं। इस प्रकार से अन्तरिक्ष-आकाशगङ्गा में विचरण करने वाले प्रमुख नवग्रहों से ही उत्पन्न दिखाई देने वाले सभी तारा (छुद्रग्रह) हैं। इन सभी ग्रहों में विराट् परमात्मा विष्णु का ही अंश है। इसी लिये जन्मलगन के अनुसार यह सभी ग्रह अपने-अपने स्वभाव के अनुसार व्यक्ति को सुख-दुःख देते रहते हैं। इन्हीं ग्रहों की शान्ति के लिये मन्त्रजप-अनुष्ठान, औषधि और ग्रहों की शान्ति के लिये विविधरत्न धारण किये जाते हैं। परमात्मा के मुख्य अंश ग्रह और स्थूल अंश सभी जीव हैं। पुण्य-पाप के अनुसार यह सभी भगवान विराट

विष्णु के महानुशासन में रहते हुये अपने-अपने प्रभाव को जीवों पर डालते रहते हैं। सूर्य के अधीन सभी ग्रहों के माध्यम से परमात्मा का ही प्रशासन चलता है। श्रीराम-कृष्ण-परशुराम-वामन आदि अवतार नारायण के रूप में यह ग्रह सभी जीवों को अपने वश में रखकर अपनी-अपनी कक्षा से इस जगत् का संचालन कर पुनः प्रलयकाल में विराट्ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। अतः 'गच्छतीति जगत्' जो चलता रहे वह ही जगत यह संसार है। 'संसरति इति संसारः' जो सरकता घटता-बढ़ता रहे वही संसार कहा जाता है। यह अनादि परम्परा पहले वृक्ष अथवा फल की भाँति यह अनादि अनन्त परम्परा से चलती रहती है। इसी की अभिव्यक्ति भारतीय ध्वज के बीच चक्र के रूप में भगवान सूर्य के रथ के पहिये की तिल्लियों की भाँति चलने का अनुकरण है। यह वैज्ञानिक सोच प्रायः विश्व के अन्य देशों में नहीं है। इजराइल के राष्ट्रध्वज में षट्कोणचक्र है। यह शिव-शक्ति के संयोग का सूचक है; क्योंकि शिवशक्ति का संयुक्त रूप ही यह संसार है।

'आदित्योऽऽदिभूतत्त्वाद् ब्रह्मावेदपठन्नभूत्।' इस कथन का यह तात्पर्य है कि ब्रह्मा जी से सर्वप्रथम सूर्य भगवान उनके आँखों से उत्पन्न हुये हैं। पुरुषसूक्त ऋग्वेद के अनुसार—'चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत' अर्थात् ब्रह्मा जी के मन से चन्द्रमा और चक्षु आँखों से भगवान आदित्य सूर्य उत्पन्न हुये हैं। यजुर्वेद के सूर्योपासनमन्त्र के अनुसार 'सूर्योऽऽत्माजगतश्च-क्षुषश्च' इस मन्त्र के अनुसार ब्रह्मा जी की आँखें ही इस जगत् तथा समस्त जीवों की आत्मा सूर्य ही प्राणतत्त्व हैं। सूर्य से प्रमुख रूप से निर्देश प्राप्त सभी ग्रह इस सृष्टि का संचालन करते रहते हैं। सूर्य की प्रमुख शक्तियाँ गायत्री और सावित्री हैं। इन्हीं की महिमा 'धी' बुद्धि है जिन्हें प्रकारान्तर से सरस्वती कहा जाता है। सभी वेदों का सार गायत्रीमन्त्र के चौबीस अक्षरों में समाया हुआ है। इन्हीं चौबीस अक्षरों के आधार पर महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना आठ काण्डों के चौबीस हजार मन्त्रों में किया है। वेदों से जानने योग्य विराट् पुरुष ही श्रीराम हैं। अतः उनके सम्बन्ध में यह वाल्मीकिमन्त्र द्रष्टव्य है—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतदासीत् साक्षाद्रामायणात्मना।।

—(वाल्मीकि रामायण)

अर्थात् वेदों से वेद्य जानने योग्य परमपुरुष विराट् नारायण ही त्रेतायुग में दशरथ-दश इन्द्रियों के रथ पर शरीररूपी सवार महारथी के समान इन्द्रियों को वश में करने वाले सम्राट् दशरथ के जेठे पुत्र के रूप में श्रीराम पुत्रेष्ठियज्ञ से उत्पन्न हुये हैं।

अत: आदित्य भगवान सूर्य नारायण ही प्रमुख ग्रहों के राजा हैं। इनसे सर्वप्रथम छ: किरणें निकलती हैं। सूर्य का प्रात:कालीन रूप ब्रह्मा, मध्य-कालीन रूप शिव और सायंकालीन रूप विष्णु हैं। इतना ही नहीं, मुख्य ग्रह सूर्य से हजारों किरणें भी निकलती हुईं समग्र सृष्टि का संचालन करती रहती हैं। इनमें प्रधान सुषुम्ना नाडी से मातृतत्त्व चन्द्रमा, सम्वर्द्धन नाडी से मंगल, विश्वकर्मानाडी से बुध, अश्वभूनाडी से बृहस्पति, विश्वावसुनाडी से शुक्र और सुराट् नामक नाडी से शनिग्रह की उत्पत्ति हुई है। यह सौरमण्डलीयग्रह मुख्य रूप से राहु और केतुग्रह के साथ मिलकर इस सृष्टि के जड़-चेतन जीवों को प्रभावित करते रहते हैं।

इस प्रकार जो कुछ भी जीव के शरीररूपी पिण्ड में है वह सभी इन सभी सौरमण्डलीय ग्रहों के तत्त्वांश हैं। इन्हीं ग्रहों के कारण जीव का भाग्य, पुण्य-पाप, सुख-दु:ख, विद्या-वैभव, नौकरी-व्यापार, नेतृत्व तथा प्रशासन आदि जीव अपने भाग्य और कर्म के अनुसार प्राप्त कर करता रहता है। जब जीव अपने जीवन का सुख-दु:ख भोगते-भोगते थक जाता है तब वह महर्षियों, ऋषियों, मुनियों और गुरुओं के बताये हुये दु:ख दूर करने के लिये प्रेरित होता है। मनुष्य कर्मयोनि है, शेष सभी भोगयोनियां हैं। अन्य जीवों को कर्म करने का अधिकार नहीं है। अत: जो शेष जीवन बचा है उसमें मनुष्य को अपने कल्याण के लिये उपाय करना चाहिये। इस स्थिति में सत्यमार्ग का आश्रयण, धर्म, कथा, प्रवचन, पूजा, पाठ, भजन से ही कल्याण सम्भव है।

नवग्रहों के पीड़ा से बचने के उपाय

सूर्यग्रह के दु:ख तथा उस दु:ख से बचने के उपाय

शिर: पीडा प्रमेहश्च सतत: सन्ततो ज्वर: ।
पित्तरोगोऽम्लशूलश्च हृद्रोगश्च विसूचिका ।।

शिरो ब्रह्मादिकं चैव विषमो दाहकज्वरः।
यमार रागाधिकाश्चैव व्याधिर्वेदविनिर्णयः।।

—(प्रश्नकल्पतरु)

व्याख्या—सूर्यग्रह के दुष्प्रभाव से शिर में बराबर पीडा, मधुमेह (डायबिटीज), प्रदररोग, सभी प्रकार के ज्वर, विषमज्वर-(मियादी बुखार), पित्तजन्यरोग—बार-बार शरीर में पित्त बढ़ना, गले में ज्वलन, कड़वा डकार आना, पित्ताशय के रोग, मुख तीता रहना, हृदय के सभी रोग, हैजा (डीहाइड्रेशन), शिर तथा मुख पर फोड़ा निकलना, विष से होने वाली बीमारियाँ, दो ग्रहों अथवा सभी ग्रहों से होने वाला रोग सन्निपात, बेहोशी, कोमा में जाना, ब्रेन-हेम्रेज आदि रोग कुण्डली में सूर्यग्रह के प्रकोप से होते हैं।

रोगनाश के लिये शास्त्रीय उपाय

सूर्यग्रह के उपर्युक्त शान्ति के लिये माणिक्य नामक रत्न मध्यमा अंगुलि में रविवार के दिन अंगूठी पर सूर्य का आवाहन पूजन कर मनुष्य के उच्च राशि पर जब चन्द्रमा हों तब उधर मुख कर 'ॐ घृणिः सूर्याय नमः, अथवा 'ॐ नमः खखोल्काय', अथवा सूर्य का वैदिकमन्त्र अथवा तान्त्रिकमन्त्र 'ॐ सं सूर्याय नमः' का जप कर धारण करें। अंगूठी सुवर्ण की होनी चाहिये। इस प्रकार अनेक मन्त्र सूर्य के हैं, किन्तु विस्तार में न जाकर इन्हीं मन्त्रों में से कोई एक मन्त्र रविवार से प्रारम्भ कर कम से कम एकमाला १०८ बार प्रतिदिन अवश्य जपें।

दान—लालवस्त्र, गेहूं, लाल़फल, लालपेड़ा, लाल दाल, लालटमाटर आदि रविवार को दान करना चाहिये।

व्रत—रविवार का व्रत रहें। दूध-फल-खाकर, एक समय विना नमक के सूर्यास्त पूर्व एक अन्न रोटी-दूध, रोटी, दही, मक्खन, मलाई अथवा केवल फल खा सकते हैं। सूर्य नमस्कार, सूर्यार्घ्य—लालचन्दन अथवा रोरी मिलाकर सूर्याभिमुख ताम्रपात्र से तामें की थाली में अथवा पृथ्वी पर सुविधानुसार अर्घ्य दें। लाल चन्दन या रोरी का तिलक लगावें।

अर्घ्य मन्त्र—

ऐहि! सूर्यसहस्त्रांशो तेजोराशे जगत्पते!
गृह्णाणार्घ्यं मयादत्तं प्रसीद परमेश्वर!!

उपाय—इन कुछ उपायों, ब्राह्मणों को दान-भोजन आदि कराने से भी सूर्यजन्य व्याधियों से मुक्ति मिल जाती है। सूर्यमन्त्र का अनुष्ठान, जप, दान आदि से मनुष्य को निश्चित शान्ति मिलती है। तीसरा उपाय औषधि सेवन विशेषज्ञ चिकित्सक के परामर्श से करें।

चन्द्रमा के लिये

चन्द्रमा शीतप्रधान, मातृसत्तात्मक, अमृतस्वरूप हैं। इसीलिये 'हालाहल विष' पान करने वाले शिव इन्हें अपने ललाट पर धारण करते हैं। 'चन्द्रमा ममनसो जातः' इस वेदवाक्य के अनुसार चन्द्रमा परमात्मा के मन से उत्पन्न हुये हैं। चन्द्रमा ही इन्द्रियों के तथा मन के देवता हैं। भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने पूछा—हे प्रभो ! मन बड़ा चंचल, सर्वथा पकड़ में न रहने वाला है। इसे वश में करना तो मुट्ठी में वायु को बाँधने जैसा अथवा भयङ्कर बाढ़ को रोक देने जैसा असंभव है। जैसे—

अर्जुन उवाच—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथिबलवद्दृढम्।
तस्य हि निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

—(गीता, ६/३४)

इस कथन का समर्थन करते हुये भगवान ने कहा हे अर्जुन ! यद्यपि यह चन्द्रमा रूपी मन व्यक्ति को मथ देने वाला है। मन के कारण ही व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोहवश होकर जघन्य अपराध कर बैठता है तथापि इस अति चञ्चल मन को धीरे-धीरे अभ्यास तथा संसार के आकर्षण से क्रमशः वैराग्य करने से ही मन को वश में कर व्यक्ति योग के शिखर पर पहुँच सकता है। अतः युद्ध के पूर्व अपने मन को वश में करो। जैसे—

असंशयं महाबाहो मनोर्दुनिर्ग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तयेय वैराग्येण च गृह्यते।।
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप्य इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यावता शक्योऽवाप्मुपायतः।।

—(गीता, ६/३५-३६)

अर्थात् हे महावीर अर्जुन ! सचमुच यह मन जो चन्द्रमासे उत्पन्न है तथा यह चन्द्रमा की तरह ही अत्यन्त चंचल है और बड़ी कठिनाई से इसे वश में करना सम्भव हो पाता है। अतः हे कुन्ती के यशस्वीपुत्र ! इसे निरन्तर अभ्यास और विषयों से वैराग्य (आसक्तिरहित) होकर इसे वश में

करना चाहिए। व्यक्ति का अपने वश में किया हुआ मन ही दुष्प्राप्य परमात्मा को तथा सर्वथा मुक्ति दिला सकता है।

चन्द्रमाग्रह से उत्पन्न व्याधियाँ

गलगण्डो गण्डमाला ज्वरश्च कफदूषितः।
कासच्छर्दिः क्षयः शूलं श्लीपदश्च जलोदरी।।
आमपीडाऽतिसारश्च हृद्रोगः श्वासकृच्छ्रता।
एते वै चन्द्रमारोगाः मुनिभिः परिकीर्तिताः।।

व्याख्या—चन्द्रमा ग्रह के कुण्डली में विपरीत स्थानों में स्थित रहने पर गले का रोग घेंघा, गण्डमाला, कफ की वृद्धि से शीतज्वर, सिरदर्द, नाक-कान बन्द होना, गले के सभी रोग, टांसिल, सूखी-काली लगातार आने वाली खाँसी, उल्टी होना, क्षयरोग (टी० वी०), श्लीपद-हाथी पाँव, जलोदर, पेट में मल के सूख जाने से पेट-दर्द, शूल, शौच साफ न होना, मल पड़ जाना, मल के रुक जाने से लीवर-आँत आदि के सभी रोग, हृदय का अधिक धड़कना, सांस फूलना, दमा आदि रोग उत्पन्न होते हैं। सूर्यग्रह की मूलराशि सिंह है।

चन्द्रजन्य रोगों से बचने के उपाय

वैसे सूर्यग्रह की भाँति चन्द्रग्रह की शान्ति के लिये चन्द्र रोगों के उपाय भी शास्त्रों-ज्योतिष-आर्विज्ञान में बताये गये हैं। वसरा की शुद्ध और जाला, क्रेकरहित, पारदर्शितायुक्त मोती चन्द्रमा को शान्त कर मन को भी शान्ति देने वाला रत्न बताया गया है। कुण्डली के अनुसार चाँदी की अंगूठी में सातरत्ती से ऊपर की मोती सोमवार को छोड़कर खरीदें, चांदी की अंगूठी बनवाकर अंगूठी में चन्द्रमा का आवाहन-पूजन-जपकर सोमवार को ही चन्द्रमा की दिशा में मुख कर छोटी (कानी) अंगुलि में धारण करें। चाँदी का दान, मोती की अँगूठी तथा मोती का भस्म आदि का सेवन तथा सोमवार का व्रत, चन्द्रमा के उदय होने पर चन्द्रार्घ्य दें, चावल, आटा, सफेदवस्त्र, सफेद गाय का दान अनुष्ठान, मन्त्रजप, ब्राह्मण भोजन आदि करावें। मोती एवं मोतीभस्म के प्रयोग से उपर्युक्त सभी रोगों में अपूर्व लाभ होता है। मोती समुद्र में उत्पन्न होती है, चन्द्रमा और लक्ष्मी दोनों समुद्र से उत्पन्न हैं। इसीलिये लक्ष्मीजी को माता और चन्द्रमा को चन्दामामा कहते हैं। पूर्णमासी की रात्रि में आकाश में पूर्णचन्द्र को देख कर समुद्र में ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगती हैं। इन्हें ही लोक में ज्वार-भाटा कहा जाता है।

यदि कुण्डली के सातवाँ स्थान जो पति के लिये पत्नी और पत्नी के लिये पति की कुण्डली में चन्द्रमा स्थित हों तो पति अत्यन्त सुन्दर, गुणी पत्नी और पत्नी को तदनुसार पति को पत्नी की भी प्राप्ति होती है। भाव-ग्रहों तथा चन्द्रमा के साथ राहु अथवा केतु चन्द्रमा कुण्डली के सप्तमभाव में स्थित हों तो पत्नी पति से और पति पत्नी से जीवनभर दुःखी-सन्तप्त रहते हैं। दुष्टग्रहों के अभाव में दोनों में अगाध प्रेम रहता है।

चन्द्रग्रह की शान्ति के लिये वैदिक और तान्त्रिक दोनों प्रकार के मन्त्र हैं। सुविधा के अनुसार जप कराना अथवा करना चाहिये। 'ॐ चं चन्द्रमसे नमः' यह चन्द्रमा का छोटा तान्त्रिक मन्त्र है। चन्द्रग्रहजन्य व्यक्ति को प्रतिदिन इस मन्त्र का जप करना-कराना चाहिये।

चन्द्रमा को अर्घ्य

चन्द्रोदय होने पर चांदी अथवा किसी भी पात्र में जल लेकर सफेद मलयागिरिचन्दन, सफेद पुष्प, अक्षत के साथ चन्द्रार्घ्य देना चाहिये। चन्द्रार्घ्यमन्त्र—

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिगोत्रसमुद्भव।
गृहिणार्घ्यं मया दत्तं रोहिणीसहितं प्रभो।। इति।

मङ्गलग्रह के लिये

मङ्गलग्रह पृथ्वी (भूमि) माता के पुत्र हैं। इसीलिये इनका एक नाम भौम भी है। आग की लपटों की भाँति लाल होने के कारण एकनाम अङ्गारक भी है। यह ग्रह सौरमणडल का सेनापति भी है। इनका स्वभाव क्रोधी और शासक (पुलिस अथवा सेना के अधिकारी जैसा) है। श्रीवायु-नन्दन हनुमान् जी से—

लाल देह लाली लसे और धरि लाल लङ्गूर।
वज्रदेह दानवदलन जै जै जह कपिशूर।।

—(गोस्वामी तुलसीदास जी महराज)

मङ्गलग्रह के प्रसन्नता तथा हनुमद् आराधन करने वाले भक्त पर अपनी कृपा बनाये रखते हैं। चन्द्रमा की मूलराशि कर्क है।

मङ्गलग्रह का स्वरूप और इस ग्रह से जायमान रोग

रक्तपीतोद्भवाःपीडा दद्रुरोगो भगन्दरः।
रक्तदृष्टिः प्रमेहश्च विफोटकभयं महत्।।१।।

दुष्टव्रणोऽस्थिभङ्गश्च रक्तश्रावोऽग्निभयम् ।
अर्शोरक्ताक्तिसारश्च व्याधयः कुजसम्मताः ।।२।। इति ।

व्याख्या—रक्त के दूषित होने वाले श्वेत-गलित कुष्ठरोग, पित्त की वृद्धि से पित्ताशय के रोग, जलन, दाद-खाज, चकत्ता, शरीर का एकाएक लाल हो जाना, गुदरोग, भगन्दर,रक्त के विकार से उत्पन्न होने वाले सभी रोग, प्रमेह-डाइविटिज, धातु का पतला होना, स्वप्नदोष, सभी प्रकार के फोड़े, कील, मुँहासे, चोट-चपेट बार-बार लगना, दुर्घटना, दुर्घटना से हड्डियों का टूट जाना, वादी-खूनी बवासीर, रक्त की टट्टी तथा खूनकी उल्टी आदि मंगलग्रह के कुपित होने पर होते हैं। कुण्डली के चक्र के प्रथम, चतुर्थ, अष्टम तथा द्वादशभाव—बारहवें स्थान पर स्थित कुण्डलीवाला पुरुष मङ्गला तथा स्त्री मङ्गली होती है। दोनों में एक ही मङ्गला-मङ्गली हों तो ऐसी स्थिति में विवाह के बाद लड़का अथवा लड़की का या तो निधन हो जाता है अथवा दोनों में भयंकर दुश्मनी रहती है। संभव है दोनों या एक आत्महत्या कर लेते हैं। मङ्गल खूनी ग्रह पुरुष प्रधान ग्रहों के सेनापति हैं। अतः उच्चस्थान अपने अपने स्थान पर रहने पर मंगल ग्रह व्यक्ति को सेनापति, दल का प्रमुख, संस्था का प्रमुख बनाता है। प्रशासन ऐसे व्यक्ति के हाथ में रहता है।

उपाय—मङ्गलग्रह की शान्ति के लिये शास्त्रों में अनेक उपाय बताये गये हैं। मन्त्रजप, अनुष्ठान, लालवस्तु का दान, लालवस्त्र का परिधान, हनुमान् जी की अथवा दुर्गा-शिव की आराधना, हनुमत् दर्शन, शनि-मङ्गल के दिन हनुमान चालीस, सुन्दरकाण्ड का पाठ, बन्दरों को फल तथे बेसन का लड्डू, भिंगोया-भुना चना स्वयं खाना तथा खिलाना चाहिये। मंगलयन्त्र का पूजन, व्रत आदि मङ्गलग्रह की शान्त के उपाय हैं। मङ्गलग्रह का मुख्यरत्न लाल मूंगा है। प्रमाण के अनुसार सोने की अंगूठी बनवा कर, उस पर मंगल ग्रह का आवाहन-पूजन, जप, लाल पुष्प चढ़ा कर मङ्गलवार के दिन मध्यमा अँगुली में धारण करना चाहिये। उपयुक्त चिकित्सा, आयुर्वेद के अनुसार प्रबालपिष्टिभस्म का सेवन करना चाहिये।

'जो यह पढ़ै हनुमान चालिसा। होई सिद्धि साखी गौरीशा ।।'

—(हनुमान चालीसा से उद्धृत)

इस चौपाई के अनुसार मङ्गलग्रह हनुमान जी के काबू में रहता है। मङ्गल की शान्ति के लिये वैदिक-तान्त्रिक अनेक मन्त्र बताये गये हैं। इनमें तान्त्रिक मन्त्र छोटा और सबके लिये उपयुक्त होते हैं। इनमें 'मं मङ्गलाय नमः', अथवा 'अं अङ्गारकाय नमः', 'भं भौमाय नमः' इन मन्त्रों में से कोई एक मन्त्र का प्रतिदिन जप अवश्य करना चाहिये। शुभस्थानों में स्थित मङ्गल ग्रह की महादशा अथवा अन्तर्दशा आने पर व्यक्ति को नये घर, नयी जमीन, नये-नये वाहन अवश्य मिलते हैं। दशमभाव में स्थित मङ्गल अपने कुल का सर्वथा विशिष्ट व्यक्ति बनाता है। अतः ज्योतिषशास्त्र में कहा गया है—'दशमेऽङ्गारको यस्य स भवेत् कुलदीपकः' इति। अर्थात् कुण्डली में दशवें स्थान पर स्थित मंगलग्रह वाला व्यक्ति अपने कुल खानदान का नाम बढ़ाने वाला होता है। मङ्गल की मूल राशि मेष और वृश्चिक यह दो राशियां हैं।

बुधग्रह का स्वरूप

बुधग्रह बुद्धि और व्यापार के ग्रह हैं। इनकी मुख्य राशि मिथुन तथा कन्या राशि है। उच्च का बुध विद्वान्, लेखक, कवि और व्यक्ति को वक्ता बनाता है। बुध का रंग हरी-हरी दूब के समान होता है।.

श्लोक—

त्वग्दोषो वायुजापीडा जिह्वारोगो विचर्चिका।
मत्तता वमने श्लेश्मा बुधे त्रिदोषदुष्टता।।१।।

व्याख्या—जब कुण्डली में बुध ग्रह विपरीत होते हैं, तब व्यक्ति चर्मरोग, चमड़ी का रंग बिगड़ जाना, बेवाई फटना, मुख पर झुर्रियाँ, शरीर का रूखा होना, वायुविकार, जीभ का रोग-निनांव आदि, मुख का फीकापन, एक्जिमा, व्यक्ति को उन्माद होना, बार-बार कय होना, कफ का बढ़ जाना, असाध्य बीमारी सन्निपात—कफ-पित्त-वात का एक साथ विकार आदि रोग उत्पन्न होते हैं। बुध कुण्डली में यदि सूर्यग्रह के साथ रहते हैं तब उसे बुधादित्ययोग कहा जाता है। यह राजयोगकारक है।

बुध की शान्ति के लिये उपाय

बुधग्रह की शान्ति के लिये जप, अनुष्ठान, रत्न तथा गणेश जी को किसी बुधवार से नित्य बारहदल हरी-हरी दूब चढ़ानी चाहिये। हाथी के दांत की अंगूठी चाँदी में अथवा पन्ना की चाँदी की अंगूठी किसी बुधवार को

प्राण-प्रतिष्ठा, जप, पूजन, दान कर अनामिका अङ्गुलि में धारण करनी चाहिये। गणेश का स्तोत्र, बुध का स्तोत्रपाठ लाभदायक होता है। बुधवार को तुलसी जी का पौधा लगाकर नित्य पूजन करने से बुधग्रह की पीड़ा शान्त होती है। पन्ना का आयुर्वेदिक भस्म मधु से खाने पर उपर्युक्त पीड़ा की शान्ति होती है। लग्नस्थ बुध अपार धन-प्रतिष्ठा दिलाता है, व्यक्ति को दीर्घायु बनाता है। बुध के वैदिक-तान्त्रिक दोनों प्रकार के मन्त्रों का जप शास्त्रों में बताये गये हैं। इनमें तान्त्रिक छोटामन्त्र 'बुं बुधाय नमः' है। हरे वस्त्र, हरी तौलिया बराबर साथ में रखनी चाहिये। हरा वृक्ष नहीं काटना चाहिये। ग्रहों का सम्बन्ध प्रकृति से भी है। अतः इसका सर्वदा ध्यान रखना चाहिये।

गुरु-बृहस्पति-ग्रह

बृहस्पति का अर्थ ज्ञानी, विचारक, गुरु आदि होता है। बृहस्पति विद्या-विवेक के देवता हैं। व्यक्ति की धर्म में रुचि, गुरुओं, ब्राह्मणों की सेवा, धर्मपालन, भगवद्भजन का अनुरागी बृहस्पति ही बनाते हैं। बृहस्पति के उच्च स्थान पर होने से व्यक्ति महामन्त्री, राजा का विश्वासपात्र होता है। मर्यादा, गौ-मातृ-पितृभक्ति, विद्वान्, राज्यपाल, राष्ट्रपति, कुलपति, प्रोफेसर आदि उच्च का गुरु अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। गुरु ही उत्तम योगी, ज्ञानी, साधु-सन्त, महन्थ, लेखक, वक्ता, विचारक, धार्मिक बनाता है। भुक्ति-मुक्ति दोनों गुरुग्रह की प्रसन्नता से प्राप्त हो जाते हैं। पुत्र-पुत्री शीलवान-गुणवान सुखी रहते हैं। गुरु के लिये पीलावस्त्र, भोजन में हल्दी अधिक और व्यक्ति मिठाई खाने वाला, मधुरभाषी होता है। अतः व्यक्ति को योग्य व्यक्ति को अवश्य गुरु बनाना चाहिये।

लक्षण-श्लोक—

उत्तमाङ्गोद्भवा पीडा मेदरोगोघ्नि वेदना।
अपस्मार श्वासारोधः गुरोर्व्याधिर्विनिश्चयः ।।१।।

व्याख्या—गुरु बृहस्पति के विपरीत होने पर बुद्धिभ्रम, मस्तिष्क, कान, जिह्वा, नाक, आँख आदि उत्तम अंगों के रोग उत्पन्न होते हैं। शरीर का मोटा हो जाना, श्वास, शरीर में पीड़ा, खांसी आदि रोग होते हैं। ज्यातिष तथा आयुर्वेदशास्त्रों में गुरुग्रह की शान्ति के लिये पीले कपड़े या डोरे में हल्दी की छिलका उतारी हुई गाँठ दाहिने बाहु अथवा गले में धारण

करना, पिप्पलवृक्ष की पूजा, पिप्पल का वृक्ष लगाना, गुरुओं की सेवा आदि से सर्वथा लाभ होता है। गुरुग्रह का मुख्य रत्न पुखराज है। पीला, ब्राह्मण-वर्ण जाला, दुधिया रहित पुखराज सुवर्ण की अंगूठी में बनवा कर प्राण-प्रतिष्ठा, जप-पूजन, पीले पुष्प चढ़ाकर बृहस्पतिवार को तर्जनी अंगुली में सोने की अंगूठी धारण करनी चाहिये। पीले पुष्प से शिव-विष्णु-गणेश-दुर्गा जी की पूजा, हल्दी मिला गाय का दूध सेवन करना चाहिये। पुखराज भस्म मधु में मिला कर चाटने से भी उपर्युक्त रोगों में आराम मिलता है। पीला नेकर, बंडी, दस्ती, तौलिया धारण करें, पीले फल, सुवर्ण, पीलेवस्त्र, पीले यज्ञोपवीत का धारण तथा दान शुभफलदायक हैं। इन उपायों से कुष्ठ सहित बृहस्पति-ग्रहजन्य सभी रोगों का शमन होता है। धर्मग्रन्थों को ब्राह्मण को दान करने से भी बृहस्पति ग्रह प्रसन्न होते हैं। बृहस्पति धनु तथा मीनराशि के स्वामी हैं। इनके लग्न में उच्चराशि में रहने से कुण्डली के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। एक लाख कुण्डली के दोषों को लग्न में स्थित बृहस्पति नष्ट कर देते हैं—

किं कुर्वन्ति ग्रहाः सर्वे यस्य केन्द्रे बृहस्पतिः ।
लक्षमेकं तु दोषाणां गुरुर्लग्ने व्यपोहति ।।

—(ज्योतिषशास्त्र)

गुरु के भी वैदिक-तान्त्रिक दोनों मन्त्र हैं। तान्त्रिकमन्त्र छोटा और सबके जप लायक है। वह—'**बृं बृहस्पतये नमः**' है। पुष्य नक्षत्र के दिन बृहस्पति होने से गुरुपुष्ययोग बनता है। यह शुभ दिन सभी उत्तम कार्यों के लिये प्रशस्त है। 'ब्राह्मणानां बृहस्पतिः' इस वचन के अनुसार गुरुग्रह ब्राह्मण, क्षमाशील, उपकारी हैं। इस प्रकार पीतवर्ण, मध्य कद-काठी के बृहस्पति दयालु ग्रह हैं। केले का पीला फल, केला के तना में पीला डोरा बाँधकर पीले अक्षत, पीले केला, पीला फल, मिठाई चढ़ाने तथा बृहस्पतिवार के दिन केसर, डालकर खीर खाने, दूध पीने से भी बृहस्पतिग्रह की कृपा प्राप्त होती है।

शुक्रग्रह के लिये

शुक्र भगवान भृगुऋषि के पुत्र, ब्राह्मण, दानवों के गुरु शुक्रनीति के प्रवर्तक हैं। शुक्रनीति में लिखा है कि श्रीरामचन्द्र जैसा धार्मिक, उदारचरित, दयालु, सभी धर्मों का पूर्णपालक, मित्र के उपकार को कभी नहीं भूलने वाले, सबके रक्षक, महापातकियों का उद्धार करने वाले, प्रजापालक, एक

पत्नीव्रत और अपने उदार स्वभाव से पशु-पक्षी, बन्दर, भालु, कोल-भील को भी सङ्गठित कर अजेय राम-रावण-युद्ध जीतने वाले चक्रवर्ती राजा रहे हैं। त्रेतायुग तथा उसके आगे भी श्रीराम जैसा राजा न हुआ न होगा—**'न भूतो न भविष्यति।'**

न रामसदृशो राजा पृथिव्यां मानदण्डअभूत्।
येन वृत्या सुभृत्या च वानरैरपि सङ्गता।।

—(शुक्रनीति)

राजा राजकृतं पापं राज्यपापं पुरोहितः।
भर्ता च स्त्री कृतं पापं शिष्यपापं गुरुस्तथा।।

—(शुक्रनीति)

शुक्राचार्य का कथन है कि यदि राष्ट्र अथवा राज्यों में अपराध होते हैं तो राजा को दण्डित करना चाहिये। यदि व्यक्तिगत रूप से राजपरिवार के राजपत्नी, राजकुमार, कुमारी, सम्बन्धी और राजा के द्वारा नियुक्त तत्तद् मन्त्रियों से अपराध हों तो प्रधान पुरोहित को अर्थात् राष्ट्रपति, राज्यपाल को दण्डित करना चाहिये। इसी प्रकार परिवार में पत्नी के अपराध पर पति और शिष्य-विद्यार्थी के अपराध पर गुरु विभागाध्यक्ष, कुलपति आदि को दण्डित करना चाहिये। इस प्रकार शुक्र महाकवि भी हैं। भगवद्गीता के विभूतियों के वर्णन में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि शुक्राचार्य मैं ही हूँ। **'कवीनामुशना कविः'** दशवाँ अध्याय।

शुक्राचार्य दानवों के गुरु हैं। एक बार दनु आदि दानवों से देवों का युद्ध हुआ। इन्द्रादि देवों को परास्त होता देख भगवान विष्णु ने भगवान शिव से प्राप्त चक्रसुदर्शन से असुरों का शिर काटने लगे। अन्त में भयभीत दानव भाग कर भृगुऋषि की पत्नी तथा शुक्राचार्य की माता दिव्या जो भृगुऋषिं की पत्नी थीं उनके पति के हिमालय में तप की स्थिति में आश्रम की देख-रेख का भार था। संयोगवश दानव भागते हुये माता के आश्रम में प्रविष्ट हो गये। शरण में आये हुये दानवों की रक्षा के लिये माता दिव्या आश्रम के द्वार पर खड़ी हो गईं। पीछा करते हुये, चक्र लिये भगवान विष्णु भी आश्रम के द्वार पर खड़े हो गये। लाख कहने पर माता ने आश्रम में विष्णु को प्रवेश नहीं करने दिया। अन्त में क्रोधित हो भगवान विष्णु ने चक्र से माता दिव्या का ही शिर काट कर विष्णुलोक लौट गये। दानवराज वलि की यज्ञ से लौट कर जब शुक्राचार्य आश्रम पर आये तब माता का कटा

शिर देख दहाड़ मार कर रोने लगे। कुछ देर में सम्हल कर आश्रम में छिपे दानवों से माता को मारने वाले का नाम पूछे। दानव भी रोते हुये अपने गुरु शुक्राचार्य को भगवान विष्णु का नाम बता दिया। इस पर शुक्राचार्य अत्यन्त कुपित हो भगवान विष्णु से बदला लेने का सङ्कल्प लेकर भगवान शिव से महर्षि भृगु को प्राप्त तथा पिता भृगुऋषि से प्राप्त 'मृतसञ्जीविनी' विद्यामन्त्र से माता को जीवित कर प्रणाम किया। माता ने सब कुछ कह सुनाया। तब से शुक्र ग्रहराज होते हुये भी दानवों-राक्षसों के गुरु बन कर उन्हें शिक्षित कर विष्णु के विरोधी हो गये। तब से मृतराक्षसों को जीवित कर शुक्राचार्य विष्णु को पीड़ा देते रहते हैं।

शुक्र एक आँख वाले, दिव्य तेज, मृत्संजीवनी विद्या के जानकार प्रमुख ग्रह हैं। व्यक्ति की कुण्डली में उच्चस्थान तथा लग्न में रहते हुये व्यक्ति को बल-वीर्य, उत्साह, दुर्लभज्ञान सहित अत्यन्त प्रतिष्ठा दिलाते हैं। लग्न्थ शुक्र व्यक्ति गोरा, उत्साही, असम्भव को सम्भव करने वाला, क्षण-क्षण में क्रोधी और प्रसन्न होने वाला होता है। शुक्रब्राह्मण और गौरवर्ण हैं। तीक्ष्णबुद्धि, अत्यन्त उत्साह देने वाले, शिव के परमभक्त, सञ्जीविनी-विद्या के विशेषज्ञ हैं। एक बार असुरों को जिला देने के कारण भगवान शिव महाकाल का रूप धारण कर शुक्राचार्य को सशरीर निगल गये। मृत-सञ्जीविनीविद्या के कारण शुक्र भगवान के पेट में पच नहीं पाये, वहीं मृत्युञ्जय मन्त्र का जप करते रहे। जब त्रिपुरासुर और तारकासुर आदि का विनाश हो गया तब भगवान शिव पेट में बराबर खुदुर-बुदुर करने वाले शुक्राचार्य को अपने लिङ्ग से लघुशङ्का के रूप में बाहर कर दिये। तभी से इनका नाम शुक्राचार्य हुआ। काशी में मृत्युञ्जय लिङ्ग की प्रतिष्ठा कर अनन्त काल तक शुक्राचार्य ने तप कर अमरत्व प्राप्त किया है। मन्दिर का विशाल षट्कोण कूप मधुरजल से परिपूर्ण तथा पेट सम्बन्धी सभी रोगों को दूर करने वाला शुक्राचार्य द्वारा निर्मित कराया गया है। जप-अनुष्ठान करने और करवाने वाले यजमान इसी कूप का जल पीते हैं। कई भक्त जल पिलाने की सेवा करते हुये भी देखे जाते हैं।

शुक्र का वर्णन

श्लोक—

नेत्रे गुह्ये गुदे लिङ्गे रोगः स्यात् भृगुदोषजः।
प्रमेहः शोथमूत्रं च गुल्मरोगोऽथ दंशकः॥१॥

स्त्रीणां प्रदरपीडा गर्भशूलादि दूषणम् ।
इन्द्रियाणां विकारः स्यान्मुष्कवृद्धिः ज्वरो महत् ।।२।।

व्याख्या—कुण्डली में शुक्रग्रह के विपरीत स्थान पर स्थित शुक्रग्रह के रूप में व्यक्ति जब शुक्रग्रह से पीड़ित हो जाता है तब व्यक्ति को आँख के सभी रोग, लिङ्ग के सुजाख, प्रोस्टेट, रुक-रुक कर लघुशङ्का, लघुशङ्का में ज्वलन, स्त्री को योनि का कैंसर सहित सभी रोग, सूजन, प्रदर (मधुमेह), गर्भ न धारण करने की स्थिति, गर्भाशय में शूल-दर्द आदि सभी रोग, काना, बहरा, गूंगा, लंगड़ा, रतौंधी, आँख का माड़ा, जाला, मोतियाबिन्द, अण्डकोष का बढ़ जाना, अधिक दिन तक रहने वाले ज्वररोग होते हैं। इनकी अशुभ दृष्टि से सभी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों के सभी रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

उपाय—शुक्रग्रह यद्यपि शुभग्रह है तथापि दानवों के गुरु होने के कारण विपरीत स्थान पर रहने के कारण दुःख देते हैं। नपुंसक भी कर देते हैं तथापि यह अपनी उच्च राशि वृष और तुला में रहकर अत्यन्त उत्तम फल देते हैं। व्यक्ति सुन्दर, गौरवर्ण होता है। लग्नस्थ शुक्र एक हजार कुण्डली के दोषों का नाश कर देते हैं। कहा भी गया है—

शुक्रो दशसहस्राणि बुधो दशशतानि च ।
लक्षमेकं तु दोषाणां गुरुर्लग्ने व्यपोहति ।।

—(ज्योतिषशास्त्र शीघ्रप्रबोध)

व्याख्या—वृष और तुला नामक लग्न-प्रथम स्थान में स्थित शुक्र दश हजार कुण्डली में स्थित अशुभग्रहों के दोषों को नष्ट कर देते हैं। वृष तथा तुला नामक राशियों के लग्न में स्थित शुक्रग्रह एक हजार कुण्डली के अशुभग्रहों के दोष नष्ट कर देते हैं। बृहस्पति ग्रह एक लाख दोषों को निर्मूल कर देते हैं। यह देवों के गुरुग्रह हैं। भगवान श्रीकृष्ण अपनी विभूतियों के वर्णन में गीता के दशवें अध्याय में कहते हैं कि पुरोधाओं में बृहस्पति मैं ही हूँ—**'पुराधषां च मुख्यं मे विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।'** इस प्रकार कुण्डली के दूसरे उत्तम ग्रह शुक्र और तीसरे नम्बर के उत्तमग्रह बुध हैं।

शुक्र ग्रह के शान्ति के उपायों में वैदिक तथा तान्त्रिक इन दोनों प्रकार के मन्त्रों का जप-अनुष्ठान, श्वेतवस्त्र, फल, चावल आटा, आदि का शुक्रवार को दान, श्वेत-उज्ज्वल वस्त्र का परिधान धारण करना चाहिये।

शुक्रग्रह की शान्ति के दूसरे उपायों में हीरे की अंगूठी मान में नवरत्ती से ऊपर की चाँदी की अंगूठी मध्यमा अंगुली में शुक्रवार के दिन धारण करनी चाहिये। आयुर्वेद का मंहगा हीरकभस्म मधु से खाना उत्तम है। श्वेतमन्दार का पुष्प भगवान शिव पर चढ़ाने से लाभ मिलता है। तान्त्रिक मन्त्र—**ॐ शुं शुक्राय नमः'** का पण्डित से तथा अपने भी जप करना चाहिये। शुक्र की उच्च अवस्था में शुक्रवार को नया कार्य शेष दोषों को बचाकर करनेसे व्यक्ति सुखी, पुत्र, धन, धान्य, बुद्धि से भारी प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। सप्तमस्थान का शुक्र सुन्दर, सुशील स्त्री दिलाता है।

शनिग्रह के कुपित होने वाले रोग

श्लोक—

यक्ष्मा वातोदो मूर्च्छारुक् कृमिसंभवाः।
पक्षाघातस्तथा श्वासः प्लीहा ज्वरेण शीर्णता।।१।।
सर्वत्र वायुजा पीडा हस्तपादप्रकम्पनम्।
एते हि शनिरोगाः स्युर्विज्ञेया मुनिसम्मताः।।२।।

व्याख्या—जब शनिग्रह कुपित होते हैं तब राजयक्ष्मा (भयङ्कर-टीबी.), वातोदर—बार-बार पेट का फूलना तथा दर्द, मूर्छा, बेहोशी-मिर्गी, प्लीहा-जिगर का बढ़ जाना, स्नायुपीडा-जोड़ों-घुटनों-नसों तथा समस्त शरीर में निरन्तरपीडा, कृमिरोग, पेट में फोड़े, केचुवे पड़ जाना, पक्षाघात-लकवा मारना, श्वास-दमा-सांस फूलने का रोग, बहुत दिन तक ज्वर बने रहने से शरीर का सूख जाना, सभी शरीर में बराबर दर्द, हाथ-पैर तथा सभी शरीर में कम्पन आदि रोग होते हैं।

उपाय—शनि बहुत ही कष्टकारक ग्रह हैं तथा उपाय न करने पर मारक हो जाते हैं। शनि मकर और कुम्भ राशियों के स्वामी हैं तथा लग्न एवं अच्छे भाव में रहने पर राजा बना देते हैं। शनि सूर्य के पुत्र, पिता के विरोधी, नीला तथा नीलावस्त्रधारण करने वाले पापग्रह हैं। शनि की दृष्टि में साढ़ेसाती, ढैया आदि दशायें कुण्डली के अनुसार सुख और दुःख दोनों देती हैं। लग्न, दशम, द्वादश, सप्तमभाव के शनि मङ्गलदोष का नाशक होते हैं। अतः इसकी शान्ति के लिये, अनुष्ठान, जप, दान, शिव अथवा हनुमान जी की आराधना कल्याणकारी है। मृत्युञ्जयमन्त्र का जप शनि के दोष नाश के लिये करना चाहिये। काला-नीला सूती ऊनीवस्त्र, तिल, उड़द,

तेल का दान, तुलादान आदि उपाय करना चाहिये। नित्य हनुमान चालीसा का पाठ, सुन्दरकाण्ड का पाठ भी शान्तिकारक है। प्रति शनिवार को शनि मन्दिर अथवा पिप्पलवृक्ष के नीचे काले तिल का दीपक सायंकाल तिल डालकर जलाने से भी लाभ होता है। घोड़े के नाल अथवा नाव से निकली कीलों-लोहे की अंगूठी अथवा नीलम-नीलीरत्नों की अंगूठी सोने अथवा चाँदी में बनवाकर उस पर प्राण प्रतिष्ठा कर शनिवार को मध्यमा अँगुली में धारण करनी चाहिये। बारहवें स्थान में स्थित शनि बहुत व्यय कराता है। शनि के भाई यमराज तथा बहन यमुना जी नदी हैं। इसी लिये यमद्वितीया-भैयादूज के दिन मथुरा के विश्रामघाट पर यम के लिये बहन के साथ दीप जलाने से तथा दान देने से शनि की पीड़ा शान्त होती है। वर्ण के अनुसार वैश्यवर्ण का नीलम, शुद्ध-जाला-क्रेक आदि से रहित नीलमरत्न का पहले शिर के नीचे रखकर परीक्षा कर लेनी चाहिये, यदि मन प्रसन्न रहे, सुन्दर स्वप्न दिखे तो नीलम शुभकारक अन्यथा हानिकारक होता है। मात्र चौबीस घण्टे में स्वाभाविक नीलम फल दे देता है। १०८ हनुमान चालीसा का प्रति शनिवार को पाठ करने से शनि की पीड़ा शान्त हो जाती है। दवा वात-नाशक खानी चाहिये। नीलम का भस्म भी लाभकारी है। शनि के बहुत ही वैदिक-तान्त्रिक मन्त्र हैं, किन्तु तान्त्रिक मन्त्र **'शं शनैश्चराय नमः'** का यथा-संभव जप करने से शीघ्र लाभ मिलता है। शनि और सोम को पूर्व दिशा में दिक्शूल होता है। इन दिनों में पश्चिम दिशा की यात्रा लाभकारी है।

राहुग्रह का स्वरूप और शान्ति के उपाय

राहु और केतु ये दो ग्रह ऐसे हैं, दोनों क्रूरग्रह कहे गये हैं। कर्क राशि के राहु शुभकारक हैं। यह दोनों ग्रह शुभग्रह के साथ शुभ तथा अशुभग्रह के साथ अशुभफलदायक हैं। राहु का समुद्र मन्थन के बाद अमृत पी लेने के कारण नारायण ने अपने चक्र से शिर काट दिया था। अमृत पी लेने के कारण राहु दो खण्डों में विभक्त होकर शिरमात्र राहु और धड़मात्र केतु के रूप में प्रतिष्ठित हैं। राहु दानवों के सेनापति तथा केतु सहित सूर्य और चन्द्रमा के संकेत से धड़ से शिर अलग कराने के कारण शाश्वत वैर रखकर अमावस्या को सूर्य पर एवं पूर्णिमा को चन्द्रमा को खाने के लिये ग्रहण लगाते हैं। पुराणों के अनुसार राहु कश्यपऋषि की चौथी पत्नी सिंहिका के

पुत्र हैं, अतः केतु भी उन्हीं के शरीर का धड़ दूसरे रूप में हैं। राहु काले तथा केतु ध्रुव के समान चितकबरे भूरे डरावने हैं।

यदि राहु का दोष होता है तो व्यक्ति उन्माद, पागल, मिर्गी, व्यर्थ की चिन्ता, मधुमेह का रोगी तथा नाभि से ऊपर की बीमारियों से त्रस्त होता है। वातरोग अधिकतर राहु और केतु के कुपित होने से होते हैं। शनिवार के दिन कालावस्त्र, कालातिल, उड़द तथा उसकी दाल का भोजन करने तथा जप-अनुष्ठान से राहु की पीड़ा से शान्ति मिलती है। हनुमत् उपासना आदि से भी लाभ होता है। मुख्य रूप से राहु का रत्न शुद्ध गोमोद तथा लाजावर्त है। इनकी चाँदी की अँगूठी में, मध्यमा अङ्गुलि में प्राणप्रतिष्ठा जप कराकर शनि के दिन धारण करनी चाहिये। जप के लिये वैदिक-तान्त्रिकमन्त्र विहित हैं। तान्त्रिक-मन्त्र 'ॐ रां राहवे नमः' है। औषधि में गोमेद भस्म का सेवन लाभकारी है। यह भस्म पाण्डु-पीलियानाशक, अग्निवर्धक, पाचक और चर्मरोगों का नाशक है। इस भस्म से बुद्धि भी बढ़ती है।

केतुग्रह एवं उनके शान्ति के लिये उपाय

केतु राहु के गुण-स्वभाव वाले, पापग्रह हैं। अक्सर यह भी सूर्य-चन्द्र के विरोधी अशुभ-स्थान पर रहने पर पित्तसम्बन्धी रोग उत्पन्न करते हैं। यह मिश्रित रंग पीले-काले-नीले रंग के संयुक्त चित्रवर्ण में रुद्रस्वरूप हैं। शिव के भक्त हैं। केतुकवच, केतु मन्त्र का जप तथा सप्तान्न दान से केतुग्रह की पीड़ा शान्त होती है। इनके कोप से शरीर में तथा हाथ-पैरों में जलन होता है। ज्वर, अपच, नींद की कमी, बार-बार शिर का घूमना, चक्कर आना इत्यादि रोग केतु उत्पन्न करते हैं। शान्ति के उपायों में जप-दान, देव-दर्शन आदि उपाय करना चाहिये। केतु के लिये राहु की भाँति गोमेद रत्न, लाजावर्त कर्धनी-अंगुली, गले आदि में धारण करना चाहिये। शनिवार ही केतु का भी दिन है। तान्त्रिक मन्त्र 'ॐ कं केतवे नमः' का जप करना-कराना लाभप्रद है। दवा-औषधि, भस्म लाभकारी हैं।

ध्यान रहे किसी विद्वान् ज्योतिषी के परामर्श से ही रत्न धारण करें, अन्यथा हानि भी संभव है।

विवाह के लिये लड़का-लड़की के कुण्डली के ग्रहों को मिलाकर विवाह करने के निर्देश दिये गये हैं। अर्थात् विवाह, सभी माङ्गलिक कार्य,

यात्रा करने में ग्रहों के फलज्ञान के सम्बन्ध में जन्म की राशि से विचार करना चाहिये। जिस देश, स्थान, नगर, ग्राम के निवास, घर में रहने, आने-जाने, युद्ध, मुकदमा, चुनाव लड़ने आदि में केवल जो पुकार का नाम हो उसी से विचार करना चाहिये।

विवाहे ग्रहमाङ्गल्ये यत्रादौ ग्रहगोचरे।
जन्मराशेः प्रधानत्वं नामराशि न चिन्तयेत्।।१।।
देशे ग्रामे गृहे युद्धे सेवायां व्यवहारे।
नमराशेः प्रधानत्वं जन्मराशि न चिन्तयेत्।।२।।

विशेष—ग्रहों की पीड़ा अथवा प्रसन्नता से न के केवल देवता ही पीड़ित होते हैं, अपितु राक्षस, दावन, भूत, प्रेत आदि भी पीड़ित हो जाते हैं। शनिग्रह की क्रूर दृष्टि से ही भगवान बालक गणेश के सिर कट गये थे। पुनः माता के कोप को शान्त करने के लिए ही भगवान शिंव ने सफेद हाथी के बच्चे का सिर काटकर गणेश जी को जीवित कर दिये। यह कथा विस्तार से 'गणेश पुराण' में वर्णित है। शनि, राहु और केतु ग्रह गणेश जी, शिव, दुर्गा तथा हनुमान जी को ही प्रभावित नहीं कर पाते अतः इनका मन्त्र, जप, दान, दर्शन, कीर्तन से लाभ होता है।

लक्ष्मी लाभ के अमोघ मन्त्र

ब्रह्मर्षि योगिराज देवरहा बाबा द्वारा बताये गये श्रीलक्ष्मी के प्राप्ति के पाँच मन्त्र

मन्त्र–१

कान्तस्ते पुरुषोत्तमः फणपतिः सय्यासनं वाहनम्,
वेदात्मा विहगेश्वरो जवनिका माया जगन्मोहिनी।
ब्रह्मेशादि सुरव्रजः सदयितस्त्वद्दासदासीगणः,
श्रीरित्येव च ते नाम भगवति ब्रूमः कथं त्वां वयम्॥१॥

व्याख्या—भक्त जगन्माता श्रीलक्ष्मी से प्रार्थना करता है। भगवान् विष्णु की दो पत्नियाँ हैं, श्रीः और लक्ष्मी। लक्ष्मी ही पद्मिनी, श्रीराधा, सीता हैं। वेद के अनुसार—

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते पत्न्याऽहोरात्रे नक्षत्राणि ।' इति ।

इस मन्त्र के अनुसार श्रीः और लक्ष्मीः यह दो विष्णु की पत्नियाँ दिन-रात्रि, नक्षत्र, योग, करण, उत्तरायण-दक्षिणाययन, ऋतुवें, वर्ष, ग्रह, युग, कल्प आदि के रूप में इस सृष्टि में सञ्चरित होती हैं। फणों के स्वामी शेषनाग जो समस्त वेदों के ज्ञाता-तत्त्वज्ञ हैं। श्रीः लक्ष्मीसहित विश्वात्मा श्रीविष्णु की शैय्या-शयन के पलंग हैं। माता लक्ष्मी संसार को मोहित करने वाली जवनिका अर्थात् पर्दास्वरूप नाटक के बीच का पर्दा हैं। जवनिका ही माया हैं। इस शब्द को महाकवि कालिदास आदि के नाटकों में बहुधा जवनिका शब्द का ही प्रयोग हुआ है। ब्रह्मा, इन्द्र, वायु, अग्नि, अकाश, जल के प्रतिनिधि देवगण अपनी-अपनी पत्नियों के साथ दास और दासी के रूप में जिनकी सेवा में दिन-रात लगे रहते हैं। अतः हे श्री ! हे लक्ष्मी ! आप लोगों के गुणगणों को मैं अज्ञानी कैसे वर्णन कर सकता हूँ ॥१॥

मन्त्र–२

यस्याते महिमानमात्मन इव त्वद्वल्लभोपि प्रभुः,
नालं मातुरियत्तया निरवधिं नित्यानुकूलं स्वतः।
तां त्वां दास इति प्रसन्न इति च स्तोष्याम्यहं निर्भयो,
लोकैकेश्वरि लोकनाथ दयिते दान्ते दयां ते विदन् ॥२॥

व्याख्या—हे मातः ! तुम्हारी महिमा इतनी ही नहीं कि तुम्हारे प्रियतम पति श्रीविष्णु हैं। वह निरन्तर तुम्हारे मन की इच्छा के अनुकूल स्वतः ही सृष्टि का सञ्चालन, भरण-पोषण-रक्षण करते रहते हैं। इस प्रकार अनन्त महिमा वाली तेरी मैं तुम्हारा दास निर्भय होकर स्तुति किस प्रकार करूँ ! हे अनन्त लोकों की जननी ! हे त्रिलोकी नाथकी भार्या ! हे भक्त की समस्त इच्छा को पूर्ण करने वाली महादानी मातः ! तुम्हारी करुणा-दया और ममता को ही न जानते हुए मैं तुम्हारी स्तुति किस प्रकार करूं? ॥२॥

मन्त्र–३

ईषत् त्वत्करुणानिरीक्षणसुधासिन्धुक्षणाद् रक्ष्यते,
नष्टं प्राक् त्वदलाभतस्त्रिभुवनं सम्प्राप्ति अनन्तोदयम्।
श्रेयो न हि नहि अरविन्दलोचनमनः कान्ताप्रसादृते,
संसृति अध्वर वैष्णवाध्वसु नृणां संभाव्यते कर्हिचित् ॥३॥

व्याख्या—हे जननी! थोड़ी ही तुम्हारी करुणामय तिरछी दृष्टि से देखने पर भी सभी ओर से सबकी करुणा-ममता और दया की अपार दृष्टि भक्त पर गड़ जाती है। चारों ओर से भक्त की रक्षा सभी देवता और मानव दानव आदि करने लगते हैं। जो पहले तुम्हारी प्रार्थना न करने के कारण व्यक्ति का सर्वस्व नष्ट हो चुका है, उसका हे करुणा की समुद्र मातः! उस पर तुम्हारी दृष्टि पड़ जाने पर त्रिभुवन का समस्त वैभव प्राप्त हो जाता है। हे कमलनेत्र महाविष्णु की प्रिया, तुम्हारी कृपा की दृष्टि मिले विना किसी का भी कल्याण सम्भव नहीं है। व्यक्ति साधक जब वैष्णवभाव की साधना और भक्ति से तुम्हारे मार्ग का आश्रय कर लेता है, तब हे मातः! तब सभी इच्छित फल साधक को प्राप्त कर लेने का मार्ग खोल देती हो ॥३॥

मन्त्र–४

शान्तानन्तमहाविभूतिपरमं यद् ब्रह्मरूपं हरेः,
मूर्तं ब्रह्म ततोऽपि यत् प्रियतरं रूपं यदेदित्यद्भुतम्।
यानि अन्यानि यथासुखं विहरतो रूपाणि सर्वाणि तानि,
आहुः स्वैः अनुरूपरूपविभवैर्गाढोपगूढानि ते ॥४॥

व्याख्या—स्थिर, शान्त और अनन्त विभूतियों-सौन्दर्य-माधुर्य और ऐश्वर्य नामक अनेक उत्कृष्ट गुणों के कारण जिस महाविष्णु को ब्रह्म कहा गया है, वह विष्णु जब महालक्ष्मी के अनन्त शेषशय्या पर महालक्ष्मी के साथ सगुण-साकाररूप में सुशोभित होते हैं, तब वह रूप अत्यन्त सुख और शान्ति प्रदान करने वाला होता है। वह जब अन्य नारायण, नृसिंह, वामन, परशुराम, नारद, श्रीराम, श्रीकृष्ण, महर्षि वेदव्यास जी के चौबीस अवतारों के रूप में होते हैं। तब भी उनका सीता-राधा आदि रूपों में अवतार लेना लोक-कल्याणकारी तथा भक्तों के लिये अत्यन्त गूढ़ तथा गाढ़ा अर्थात् प्रियतमरूप से ग्राह्य और उपकारक होता है ॥४॥

मन्त्र–५

अकारत्रयसम्पन्नामरविन्दनिवासिनीम् ।
अशेष जगदीशित्रीं वन्दे शरदवल्लभाम् ॥५॥

व्याख्या—तीन अकार—अर्थात् ॐकार, अकार-उकार-मकार, अथवा तीन वाग्भवकूट चिन्तामणि मन्त्र के बीजाक्षर—**'ॐ ऐं, ॐ ह्रीं, ॐ क्लीं**

के रूप में श्रीमहाकाली सृष्टि और संहार के रूप में 'ऐं', पालन-पोषण-सम्वर्द्धन के रूप में श्रीमहालक्ष्मी 'ह्रीं' के रूप में तथा महासरस्वती ज्ञान-विज्ञान-बोध और सभी कामनाओं इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये 'ॐ क्लीं' के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। इस प्रकार भूः भुवः स्वः महः, जनः, तपः और सत्यलोक के रूप में ऊर्ध्वलोक एवं अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल तथा पाताल नामक सात पाताल लोकों सहित चौदहों भुवनों एवं आकाश-अन्तरिक्ष, पृथ्वी सात द्वीपों-देशों में पृथ्वीलोक और पाताललोक में सातरूपों में विभक्त होकर जीवों की सृष्टि-संहार, पालन-पोषण-रक्षणरूपों में और तत्तद्लोकों के प्रकाश, ज्ञान-विज्ञान और समग्र इच्छापूर्ण करने वाली शक्ति के रूप में अपने को विभक्त कर सभी लोकों की स्वामिनी शरदऋतु के श्वेतकमल के समान अत्यन्त सुन्दर तथा कमलपुष्प पर सवार महालक्ष्मी का मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।।५।।

इस प्रकार महात्मा देवरहाबाबा द्वारा दिये गये महालक्ष्मी जीके यह पाँच मन्त्र सभी प्राणियों के सभी प्रकार की इच्छा को पूर्ण करने वाले तथा सुख-शान्ति देने वाले हैं। मैं अपने अनुभव के बल से ऐसा निवेदन कर रहा हूँ। **'ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै नमः'** इस मन्त्र का जप कर व्यक्ति चारों पुरुषार्थ शीघ्र प्राप्त कर लेता है।।

बलातिबला विद्या

महर्षि विश्वामित्र द्वारा श्री और श्रीलक्ष्मी स्वरूप में दी गईं बला-अतिबला विद्यायें इस प्रकार हैं—

क्रिया—पहले विनियोग का मन्त्र पढ़कर जल हाथ में लेकर नीचे गिरा दें।

विनियोग—ॐ बलातिबलयोर्विराट् पुरुषऋषिः, गायत्रीछन्दः, सविता-देवता, अकारो बीजम्, उकारः शक्तिः, मकारः कीलकम्, क्षुधान्निरसने विनियोगः।

पुनः 'ॐ क्लीं' इस बीजमन्त्र से पाँचों अंगुलियों तथा हृदय, शिर, शिखा, आँखों का स्पर्शकर 'ॐ क्लीं' कहकर शरीर के चरों ओर चिकुटुकी बजाकर विघ्नों को भगाँवें।

पुनः विद्या के मन्त्र से ध्यान करें—

मन्त्र–१

अमृतकरतलार्दौ सर्वसञ्जीवनाख्या-
वधहरणसुदक्षौ वेदसारे मयूखे।
प्रणवमयविकारौ भास्कराकारदेहौ,
सततमनुभवेऽहं तौ बलातिबलान्तौ ॥ इति।

व्याख्या—ऐसा ध्यान कर इस मन्त्र की दीक्षा किसी ब्राह्मणगुरु से लेकर कहीं जाना हो और भोजन पानी मिलने की सम्भावना न हो तो कम से कम नीचे लिखे मन्त्र का एक सौ आठ (१०८) बार जप कर जाँय।

मन्त्र—ॐ ह्रीं बले, महादेवि ॐ ह्रीं महाबले, ॐ क्लीं चतुर्विध-पुरुषार्थसिद्धिप्रदे तत्सवितुवरदात्मिके ह्रीं वरेण्यं भर्गोदेवस्य वरदात्मिके अतिबले सर्वदयामूर्ते बले सर्वक्षुद्भ्रमोपनाशिनि धीमहि धियो यो नो जाते प्राचुर्यो या प्रचोदयात्मिके हुँ फट् स्वाहा ॥१॥ यह सावित्री उपनिषद् का मन्त्र है।

उपर्युक्त मन्त्र का भाव—इस बला और अतिबलाविद्या (मन्त्र) का उपदेश स्वयं वेदात्मा भगवान सूर्य ने देवी सावित्री को सावित्री उपनिषद में दिया है। यह अत्यन्त दुर्लभ विद्या मैं लोक-कल्याण के लिये इसे लिख रहा हूँ। इस बलाअतिबलाविद्या के विराट्पुरुष भगवान विष्णु ही मन्त्र के प्रवक्ता ऋषि हैं। इस मन्त्र का वैदिक गायत्री छन्द तथा स्वयं सबकी उत्पत्ति के कारण सविता सूर्य देवता हैं। इनका अकार-शिव, उकार विष्णु शक्ति और मकार विन्दु प्राणसत्ता है। इससे ही मन्त्र सुरक्षित है। इस विद्या का प्रयोग महर्षि विश्वामित्र ने अपने यज्ञ में विघ्न करने वाले माली, सुबाहु, मारीच और ताड़का को मार कर निर्विघ्न यज्ञ कराने के कारण प्रसन्न होकर श्रीराम और लक्ष्मण को दिया था। योगबल से उन्हें ज्ञात हो गया था कि राक्षसों के विनाश के लिये श्रीराम और लक्ष्मण सीता सहित चौदह वर्षों के लिये वन में जाना होगा। वन में घूमते हुये भूख-प्यास लगेगी, इससे बचने के लिये महर्षि ने दोनों को इस विद्या का दान किया। अतः अङ्गन्यास उपर्युक्तविधि से करना चाहिये।

मन्त्र का अर्थ

बला और अतिबलाविद्याओं का करकमल (हाथ) अमृत से सना हुआ है। इस अमृत से विद्यायें साधक को भूख-प्यास से रक्षा के लिये अपने कोमल अमृत हाथों से अमृतमय स्पर्श कर सञ्जीविनी प्रदान करती हैं। इन विद्याओं के कारण साधक के पूर्वजीवन के संचित पाप नष्ट हो जाते हैं। इन विद्याओं का प्रकाश भगवान सूर्य के समान है। ऐसी वेदों की हृदय ज्योतिर्मयी, प्रणव (ॐकार) स्वरूपा भगवती बला और अतिबला का ध्यान करना चाहिये।

मन्त्र का इतिहास एवं माहात्म्य

श्रीमद्वाल्मीकिरामायण में इस बला और अतिबला महाविद्या मन्त्र का सविधि दीक्षा देते हुये महर्षि विश्वामित्र जी ने लक्ष्मणसहित श्रीराम से कहते हैं कि—हे राम! तुम इस बला और अतिबलाविद्यामन्त्रसमूह (महामन्त्र) को आदरपूर्वक ग्रहण करो, इस विद्या के प्रभाव से तुम दोनों के मुख पर कभी भी थकान की उदासी नहीं होगी। इसके प्रभाव से सोये हुए तथा असावधानी में भी राक्षस धोखे से आक्रमण करने में प्रभावी नहीं होंगे। तुम लोगों द्वारा इस मन्त्र का पाठ करने से इस संसार में तुम लोगों के सौभाग्य में, दक्षता-कुशलता, ज्ञान,निश्चय करने में, वाद-विवाद, तर्क आदि में तुम दोनों की कोई भी समानता नहीं कर सकेगा। यह विद्या सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की जननी है। तेजस्विता से परिपूर्ण यह बला-अतिबला के कारण तुम लोगों से कोई भी सामना नहीं कर सकेगा। यह महाविद्यायें पितामह ब्रह्मा जी की पुत्री हैं। हे राघव! इसके पाठमात्र से तुम लोगों को भूख और प्यास नहीं लगेगी। मैंने बहुत सोच-विचार कर इस महाविद्या को सबके कल्याण के लिये दिया है। योग्य गुरु से इस पाठ को समझ कर शुद्ध हो शुद्धभाव से ग्रहण की हुई यह विद्या कभी भी निष्फल नहीं होगी।

महामृत्युञ्जयमन्त्र

भगवान् मृत्युञ्जय का ध्यान और पाठ तथा महामृत्युञ्जयमन्त्र के जप का विधान तथा फल

मन्त्र–१

ॐ मृत्युञ्जय परेशान जगदामयनाशनम्।
तव ध्यानेन देवेश! मृत्युं प्राप्तोऽपि जीवति ॥१॥

व्याख्या—हे परमात्मा ! मृत्यु को भी जीतने वाले, अजर, अमर, निर्गुण, सगुण, कूटस्थ, परमप्रकाशस्वरूप मृत्युञ्जय भगवान, समस्त स्तुति जप करने वाले आर्त भक्तों को सर्वथा अभय दानकर समस्त दुःख, शोक, संकट, कष्टों का नाश करने वाले ! आपका जटाधारी, शिर पर गङ्गा, गले में सर्पों की माला, ललाट पर अर्धचन्द्र, चिता की विभूति से आच्छादित शरीर मुण्ड-ज्ञानरूपी वर्णों की माला धारण किये हुये, अमृत के स्वर्णकलशों से स्नान कराये जाते हुये, हे देवों के देव महादेव ! इस स्वरूप का आप का ध्यान करने मात्र से मुँह बाये सामने खड़ी मृत्यु से आप जीवों की, भक्तों की रक्षा कर मृत्यु से बचा लेते हैं। अतः आपको प्रणाम है ॥१॥

मन्त्र-२

पञ्चास्यदोर्दण्डदशाङ्घ्रिधनेमिदिनेशभालेन्दुयुक्तं गणेशैः ।
वामङ्गसंस्थागिरिजासमेतं वन्दे महामृत्युविनाशरूपम् ॥२॥

व्याख्या—हे भगवन् ! आपके चारों दिशाओं में क्रमशः पूर्व में तत्पुरुष, दक्षिण दिशा में ईशान, पश्चिम दिशा में अघोर और उत्तर दिशा में सद्योजात तथा ऊपर आकाश की ओर का ऊर्ध्वमुख वामदेव नामक पञ्चमुख हैं। इन पाँचों मुख से अमृतमयी ज्ञानधारा निरन्तर निकल रही है। आपकी दश अंग की शरीर की मूल मध्य स्थित अस्थि ही इस सृष्टि का मेरुदण्ड है। हजारों सूर्य के प्रकाशों से देदीप्यमान आप का मुखमण्डल तथा ललाट पर अमृतगर्भ अर्धचन्द्र सुशोभित हो रहे हैं। हे आदिदेव ! गणेश जी के साथ ही हजारों शिवगणों के प्रमुख (मुखिया) नन्दी-भृङ्गी, बाणासुर आदि घेर कर स्तुति कर रहे हैं। आपके वामभाग में हिमगिरि (हिमालय) की नन्दिनी माता गिरिजा (पार्वती) जी सुशोभित हो रही हैं। इस प्रकार सबको साथ लिये है मृत्युञ्जय भगवान ! आसन्न (सामने मुँह बाये) खड़ी मृत्यु से मेरी रक्षा कीजिये ॥२॥

मन्त्र-३

देवं मृत्युविनाशनं भयहरं साम्राज्यमुक्तिप्रदम्,
नानाभूतगणान्वितंदिवि पदैर्देवैः सदा सेवितम् ।
अज्ञानान्धकनाशनं शुभकरं विद्यासुसौख्यप्रदम्,
देवं मृत्युहरं महेश्वरहरं मृत्युञ्जयं भावये ॥३॥

व्याख्या—भक्त कहता है—मैं उस महादेव भगवान मृत्युञ्जय की प्रार्थना करता हूँ, जिनके भय से मृत्यु थरथर कांपती है, यदि मृत्युञ्जय क्रुद्ध हो जाँय तो मृत्यु का ही सर्वथा नाश हो जाय। अतः इनका स्मरण-पूजन मृत्यु के भय को मिटा देता है। यदि मृत्युञ्जयमहादेव प्रसन्न हो जाँय, तो जीव त्रैलोक्य के साम्राज्य का भोग कर अन्त में साधक होकर मुक्ति पा जाता है। मुक्ति जीवन-मरण का खेल है। इससे भक्त को छुटकारा मिल जाता है। भगवान मृत्युञ्जय नानाप्रकार के भूत-प्रेत-डाकिनी-शाकिनियों से घिरे रहते हैं साथ ही देवलोक के सभी देवता-देवियाँ भी एक पैर से खड़ा होकर सेवा में तत्पर रहते हैं। अज्ञान-स्वरूप अन्धक भस्मासुर का नाश कर भक्त के सभी शुभकार्य सिद्ध कर देते हैं। समस्त विद्यायें, ज्ञान-योग, भक्ति भक्त में आ जाती हैं। इस प्रकार सभी कुछ और सभी देव-दानवों के कल्याण करने वाले महामहेश्वर, हर—सभी पाप, भय, दुःख-दारिद्र्य को सर्वथा निर्मूल कर देने वाले भगवान मृत्युञ्जय की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।।३।।

मन्त्र–४

वन्दे ईशानदेवाय नमस्तस्मै पिनाकिने।
आदिमध्यान्तरूपाय मृत्युनाशं करोतु मे ।।४।।

व्याख्या—मैं ईशान नामक मृत्युञ्जय भगवान की बार-बार वन्दना करता हूँ, जिनके हाथ में सभी अस्त्र-शस्त्रों का संहार करने वाला अमोघ त्रिशूल, पाशुपतास्त्र और पाशुपतनामक धनुष-बाण हैं। भगवान मृत्युञ्जय ही इस सृष्टि का आदि-प्रथम कारण, मध्य-पालन-पोषण और अन्त-मृत्यु-प्रलय के मूलकारण हैं। अतः भगवान मृत्युञ्जय की वन्दना अपने मृत्यु के भय का विनाश करने के लिये मैं कर रहा हूँ।।४।।

मन्त्र–५

नमस्तस्मै भगवते कैलासाचलवासिने।
नमो ब्रह्मेन्द्ररूपाय मृत्युञ्जय प्रसीद मे ।।५।।

व्याख्या—मैं उस मृत्युञ्जय शिव को जो हिमालय पर्वत के सबसे उच्च शिखर कैलास पर्वत पर भगवती पार्वती सहित निवास करते हैं। इस कैलास पर ब्रह्मा, विष्णु और देवराज इन्द्रसहित सभी देव-देवी आकर अपना प्रणाम निवेदित करते रहते हैं। अतः ऐसे मृत्युनिवारक भगवान महेश्वर शिव को मेरा अनन्त प्रणाम हैं।।५।।

मन्त्र–६

नमोविष्ण्वर्करूपाय नमो ज्ञानस्वरूपिणे।
मृत्युं नाशायताममाशु मृत्युञ्जय प्रसीद मे ॥६॥

व्याख्या—रोगी भक्त कातर होकर शिर झुकाकर भगवान मृत्युञ्जय की प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे महादेव! लिङ्ग-पिण्डस्वरूप विश्वमय, हजारों सूर्य के समान अनन्त ज्ञान से देदीप्यमान होकर हे प्रभो! मेरे शिर पर लपलपाती जीभवाली मृत्यु को मारकर मेरा प्राण बचा दें ॥६॥

मन्त्र–७

त्रयम्बकाय नमस्तुभ्यं पञ्चास्याय नमो नमः।
दोर्दण्डचापाय मम मृत्युं विनाशय ॥७॥

व्याख्या—हे त्र्यम्बक-तीन नेत्र, त्रिपत्र विल्वपत्र से पूजित, त्रिगुणातीत, त्रैलोक्य के स्वामी अर्घ्यरूप शक्ति में प्रतिष्ठित, हे पञ्चमुख, हे दोनों हाथों में अपने पिनाक नामक अमोघ धनुष को दुष्टों के संहार के लिये ताने हुये प्रत्यञ्चा पर बाण रख कर मेरे सामने खड़ी भयंकर मृत्यु का विनाश कर दीजिये ॥७॥

मन्त्र–८

नमोऽर्धेन्दुस्वपाय नमो दिग्वसनाय च।
नमो भक्तार्तिहन्त्रे मम मृत्यं विनाशय ॥८॥

व्याख्या—हे महादेव! हे अर्धनारीश्वर! हे दिगम्बर! हे भक्त की सभी पीड़ा को निर्मूल कर देने वाले दयालो! सामने मृत्यु का जाल लिये खड़ी मृत्यु के जाल को काट कर मुझ अपने भक्त को निर्भय कर दीजिये ॥८॥

मन्त्र–९

मृत्युञ्जयाष्टकं दिव्यं त्रिकाले यः पठेन्नरः।
अपमृत्युर्व्रजेत्तस्य सत्यं सत्यं शिवाज्ञया ॥९॥

व्याख्या—इस प्रकार इस मृत्युञ्जय स्तोत्र के आठ मन्त्रों का जो भक्त त्रिकाल प्रातः-मध्याह्न और सायं पाठ करता है उस भक्त की कभी चोट-चपेट, हत्या की नियत से किये जाने वाले घात-प्रतिघात तथा भयंकर रोग

आदि से कभी अकालमृत्यु नहीं होती। यह भगवान शिव की प्रतिज्ञा सत्य है, सत्य है ॥९॥

मन्त्र–१०

> अर्धरात्रे जपेन्नित्यं चतुरशीति संख्यया।
> काले मृत्युर्विनश्येत अकालाल्पस्य का कथा ॥१०॥

व्याख्या—जो पीड़ित व्यक्ति स्वयं अथवा अन्य से अशक्त होने पर प्रतिदिन आधी रात्रि में इस स्तोत्र का पाठ और महामृत्युञ्जयमन्त्र का चौरासी बार जप करता है उस भक्तव्यक्ति की ब्रह्मा जी द्वारा निर्धारित समय पर भी मृत्यु नहीं होती, फिर अकालमृत्यु की क्या बात है? ॥१०॥

मन्त्र–११

> आलस्येनाप्रसङ्गेन श्रद्धाहीनेन चेतसा।
> पठेद्वाप्यकालेषु ध्रुवं मृत्युं निवारयेत् ॥११॥

व्याख्या—जो कोई व्यक्ति मृत्यु से भयभीत होकर आलस्य तथा श्रद्धारहित होकर भी ऊपर के श्लोकों का पाठ व बेमन से भी उपर्युक्त स्तोत्र का पाठ तथा मृत्युञ्जय मन्त्र का जप करता रहता है उसकी निश्चित मृत्यु टल जाती है। इसमें शङ्का तथा अविश्वास कभी नहीं करना चाहिये ॥११॥ इति।

विशेष—मृत्युञ्जयमन्त्र के जप के पूर्व उपर्युक्त पाठ कर ध्यान करें—

ध्यान का मन्त्र

> ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसम्,
> रत्नाकल्पोज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
> पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
> विश्वाद्यं विश्ववद्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

व्याख्या—चाँदी के पर्वत के समान जिनके शरीर की शुभ्रकान्ति है, जो सुन्दर चन्द्रमा को अपने विशाल ललाट पर धारण किये हुये हैं, समस्त उत्तमोत्तम रत्नों से अलङ्कृत हैं, जिनके एक हाथ में चमचमाता फरसा, आसन कस्तूरी मृग का चर्म, तीसरा हाथ भक्तों को अभयदान करता हुआ ऊपर उठा है, जो निरन्तर प्रसन्न रहते हैं, मृगचर्म के चारों ओर श्वेत रक्त-

पीत-नील कमल के पुष्प बिखरे हुए हैं, सभी तैंतीस करोड़ देवतागण खड़े होकर जिनकी जिरन्तर स्तुति कर रहे हैं, जो सद्य उतारी हुई व्याघ्र के चर्म का कपड़ा चर्म ओढ़े हुये हैं, जो समस्त विश्व के प्रथम उत्पत्ति के बीज हैं, जो भक्त के समस्त भय को दूर कर अभय कर देने वाले हैं, जिनके पाँच मुख और तीन नेत्र हैं, ऐसे भगवान महामृत्युञ्जय का मैं ध्यान कर रहा हूँ।

भगवान मृत्युञ्जयमन्त्र का अपनी-अपनी समाधि के द्वारा प्राय: सभी महर्षि, ऋषि, मुनियों ने अपने-अपने दिव्यदृष्टि से देखकर अलग-अलग मन्त्र के स्वरूप का दिव्य निरूपण किया है तथापि शुक्राचार्य, भगवान विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य और मार्कण्डेय ऋषि के मन्त्र साङ्गोपाङ्गशास्त्रों में उपलब्ध हैं। शिवमहापुराण के अनुसार मृत्युञ्जय का साक्षात् दर्शन पाकर भक्त ऐसा अनुभव करता है कि जो काशी के मृत्युञ्जय भगवान के मन्दिर का स्वर्ण विग्रह देखा है वह लिङ्ग और अमृतस्नान करते हुये भगवान मृत्युञ्जय के विग्रह का अत्यन्त सुन्दर और सभी प्रकार से शास्त्रसम्मत मानता है। इसीलिये संकटग्रस्त यजमानों के लिये भगवान् मृत्युञ्जय का जप हजारों पण्डित मन्दिर के विशाल प्राङ्गण में भगवान की ओर मुख कर जपते रहते हैं। मन्दिर के सबसे वृद्ध दीक्षित पुजारी जी मन्दिर के गर्भगृह में बैठ कर रुद्राष्टाध्यायी का पाठ, अभिषेक कर मन्त्र का निरन्तर जप करते रहते हैं। यही स्थिति बाबाविश्वनाथ मन्दिर की भी है। हजारों भक्तों का रेला सम्पूर्ण उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम-दिशाओं से आये भक्त 'हरहर महादेव', 'हर हर वम वम, हर हर वम वम हर हर' का उद्घोष करते रहते हैं। अन्नपूर्णा जी तथा विशालाक्षी का दर्शन-पूजन किये विना शिव की पूजा-जप अपूर्ण ही रहता है।

मृत्युञ्जयमन्त्र—'ॐ हौं (ह्रौं) जूँ सः ॐ भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यमामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। ऊर्वारुक्मिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।। ॐ हौं (ह्रौं) जूँ सः भूभुर्वः स्वरों जूँ सः ॐ' ।।

मन्त्र का अर्थ—मन्त्र की प्रथम व्याहृति हौं और ह्रौं यह दो विधा अपने-अपने गुरु सम्प्रदाय से जुड़ी हैं। हकार शिव का तथा शिवगण हनुमान् जी का बीज अक्षर है। औकार ए-ओ का ही विस्तार है जो महेश्वर की अनन्तसत्ता का बोध कराता है। अनुस्वार प्राणसत्ता का सूचक है।

सम्पूर्ण 'हौं' बीज शिव की शक्ति का तथा अनादि अनन्त सत्ता का परिचायक है। 'ह्रौं' बीज में रकार अग्निबीज है जो शिव के महाप्रकाश ज्ञानसत्ता का सूचक है, किन्तु 'जूँ' व्याहृति का अर्थ जीवनीशक्ति और ज्ञान-विज्ञान का ही बोधक है। इसीलिये एक सम्प्रदाय में मात्र हौं का ही प्रयोग किया जाता है। 'स:' बीज व्याहृति शक्ति का विसर्ग अर्थात् शिव में लीन होना है। इस प्रकार सर्ववेद तथा शास्त्रों का सारतत्त्व प्रणव ॐकार शिव-शक्ति-ब्रह्मा-विष्णु मय होकर आदिशक्ति सृष्टि हकार-शिव, जूँ सम्पूर्णसुखमय जीवन मध्य तथा 'स:' सभी का आदि-मध्य अन्त का बीज शिव शक्ति ही हैं, यही इन प्रणवसहित तीनों व्याहृतियों का भाव है।

तीनों लोकों में चौदहभुवन का एक ब्रह्माण्ड है। विराट् की अनन्तसत्ता में अनन्त ब्रह्माण्ड, अनन्त ब्रह्मा-विष्णु, अन्तग्रह-सूर्यचन्द्रादि एक-एक ब्रह्माण्ड का पालन-पोषण-नियमन उसी विराट् के महानुशासन में रहकर करते रहते हैं। उसकी आज्ञा और अनुशासन का कोई भी जीव उल्लङ्घन नहीं कर सकते। हम अपने कार्य में भले ही देर कर दें, किन्तु महानुशासक के भय से सूर्य सहित सभी ग्रह, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा समस्त पञ्चमात्रायें रूप-रस-गन्ध-स्पर्श और श्रवण शब्द यह सभी नियत काल के अधीन एकक्षण का भी विलम्ब नहीं कर सकते। सोचें, यदि वायु बहना बन्द कर दें तो कोई जी सकता है? ऐसा महानुशासक शिव का महाशासन है। उसका भय लोकमङ्गल के लिये है। तभी तो मृत्युञ्जय 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' हैं। सौन्दर्य-माधुर्य-ऐश्वर्य की पराकाष्ठा के स्वामी शिव हैं। इसी को इन तीन व्याहृतियों में व्यक्त किया गया है।

भू: (पृथ्वी), भुव: नक्षत्र और राशि की कक्षा, स्व:—देवों-पितरों का लोक, मह:—सन्त-वैष्णव-शाक्त-गाणपत्यों आदि का लोक, जन:—दिव्य आत्माओं का लोक, तप:—तपस्वियों, योगियों का लोक, सत्य-ब्रह्मा-विष्णु-प्रमुख प्रशासकों का लोक और इसके भी ऊपर कैलास शिवशक्ति का अचल-अटल लोक है। पृथ्वी से नीचे, अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल नामक लोक हैं। इन लोकों में अनन्त प्रकार के लोकों में जलजीव, कृमि-कीट, सर्पों की विभिन्न जातियाँ, राक्षसों, दानवों आदि के सात लोक हैं। सबके अन्त में पाताललोक है, जिसके स्वामी

शेषनाग जी हैं। इन्हीं की दिव्य फणाओं पर यह पृथ्वी सहित चौदह भुवन स्थित हैं। यहाँ भक्तराज प्रह्लाद के साथ दानवों के राजा बलि का राज है, जिनकी प्रार्थना पर भगवान विष्णु ने गङ्गा जी की एक धारा पाताल गङ्गा के रूप में यहाँ बहाया है। स्वयं भगवान विष्णु बलि के पाताल के द्वार पर द्वारपाल के रूप में स्थित रहते हैं। इसका वर्णन प्रायः अनेक पुराणों में हुआ है। इस प्रकार ऊर्ध्वसातलोक, निम्नसातलोक मिलाकर एक ब्रह्माण्ड है। विराट् मृत्युञ्जय के अनगिनत ब्रह्माण्ड हैं। लोकों में स्थित जीव भी पिण्डरूप में एक छोटा ब्रह्माण्ड है। दर्शनों के इस सिद्धान्त को एक सूत्र 'यद् ब्रह्माण्डे तदेव पिण्डे' ऐसा कहा गया है। इस शरीर में भी सभी लोक और ग्रह, पर्वत-नद-नदी आदि के रूप में इन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहङ्कार, चित्तवृत्ति तथा शिवशक्ति के रूप में प्रकाशात्मक आत्मा रूपी शिवशक्ति का साम्राज्य है। गीता में इसी बात को भगवान श्रीकृष्ण ने इस प्रकार कहा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्ररूढानि मायया।।

—(गीता १८/६१)

हे अर्जुन! परम परमेश्वर विष्णु-शिव सभी जीवों के केन्द्र-स्थान हृदय में स्थित होकर अपनी सम्मोहिनी माया से गाड़ी के चक्के के समान तत्तद् कार्यों में जीवों को घुमा रहे हैं।

इस प्रकार व्याहृतियों के अर्थ का निर्देश कर मूलमन्त्र में त्र्यम्बकशब्द त्रिनेत्र, त्रिगुणातीत शिव का बोधक है। यजामहे यह शब्द मृत्युञ्यमन्त्र का जपयज्ञ है। वैसे भी भौतिकरूप से रुद्रयज्ञ होते ही रहते हैं। इस यज्ञ का फल सुगन्धि अर्थात् व्यक्ति का उत्तम स्वास्थ्य, उत्तम जीवन तथा पुष्टि का भाव मृत्यु का भय, सङ्कट आदि से मुक्ति पाना है। वर्द्धनं आदि सभी प्रकार के सुख-शान्ति की प्राप्ति है। उदाहरण के रूप में जिस प्रकारं पूर्वाञ्चल में कांकड़नामक फल जो प्रायः मक्का के खेत में स्वयं उत्पन्न होकर बड़ी-लम्बी कांकरि का फल जब पूर्णरूप से पक जाता है तब वह अपने मूलतन्तु डंढल से स्वतः अलग हो जाता है। यह फलाहारी मीठा-स्वादयुक्त फल स्वयं पृथ्वी से उत्पन्न फल है। डंठल से अलग होकर बीच से फट जाने के कारण इसे 'फूट' भी कहते हैं। इसी ईश्वरीय विधान को मन्त्र में 'ऊर्व्वारुक' इस शब्द से मृत्युरूपी बन्धन से मुक्ति प्राप्त करने के लिये मन्त्र में भगवान मृत्युञ्जय

से प्रार्थना की गई है। मन्त्रविधान के अनुसार मूलमन्त्र के पश्चात् पुनः व्याहृतियों से मन्त्र सम्पुटित कर सबका समाहार विराट् में समर्पित कर दिया गया है।

अतः मनन कर्तृक त्राण-रक्षा कारक मन्त्र-समूह स्वयं शिव से उत्पन्न हैं। इसीलिये मन्त्रोच्चारण शुद्ध, अर्थ के ज्ञान के साथ बीजाक्षर व्याहृति, संकल्प, विनियोग, न्यास, ध्यान आदि के बाद मन्त्रजप पूर्ण कर देवता को समर्पित कर देना चाहिये। मृत्यु के भय का नाश केवल महाकाल मृत्युञ्जय ही कर सकते हैं। तभी तो महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है—'भावी मेंटि सकहिं त्रिपुरारी।' इस प्रकार भगवान मृत्युञ्जय का कुछ लोग पीड़ित व्यक्ति का नाम लेकर केवल मूल मन्त्र का ही अनुष्ठान करते हैं। जैसे—

'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धीं पुष्टिवर्द्धनम्।

ऊर्व्वारुकमिव अमुकं (यहाँ नाम) पालय पालय स्वाहा' ऐसा उच्चारण करते हैं।

कुछ लोग सम्पूर्ण व्याहृतिरहित मन्त्र के स्थान पर न्यास, विनियोग, ध्यान कर मात्र त्र्यक्षरी मन्त्र 'ॐ हौं जूं सः' का ही उच्चारण करते हैं। इस का भी फल महामृत्युञ्जयमन्त्र के समान ही होता है। शेष मन्त्र बड़े-बड़े हैं, अतः उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है। अन्त में—

इत्येवं शम्भुमहिमानं मया विचिच्य विस्तारितम्।
तेन मृत्युञ्जयो देवो ममानुग्राहको भवेत्।। इति।

अर्थ—इस प्रकार से राजनाथत्रिपाठी नाम पण्डित उपर्युक्त प्रकार से महामृत्युञ्जय मन्त्र का अर्थ सहित भाव कह दिया है। अतः इस मेरे कर्म से प्रभु मृत्युञ्जय मेरे ऊपर अपनी असीम कृपा कर दें।

महामृत्युञ्जयमन्त्र का अन्य विकल्प

भगवान रुद्र क्रोधी स्वभाव के होते हुये भी नवनीत से भी कोमल हैं। एक भी उनसे की गई आह! पर वह द्रवित हो जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में—

साशित कर पुनि करहिं पसाऊ।
नाथ ऋषिन्हकर सहज स्वभाऊ।।

—(श्रीरामचरितमानस)

सन्तों का निग्रह-अनुग्रह का सहज स्वभाव होता है। अपराध पर वह ब्रह्मा जी को भी क्षमा नहीं किये। शिर काट-काट कर भी मृत्युञ्जय का अर्चन कर प्रसन्न करने वाले राक्षसराज रावण सहित सभी अपराधी देव-दानवों को दण्ड देना उनका अपरिहार्य स्वभाव भी है। शिवमन्दिर में गुरु का अपनमान करने वाले एक भक्त को भी उन्होंने दण्ड यह कहते हुये दिया था कि—

जो नहिं दण्ड करों खलु तोरा। भ्रस्ट होई श्रुतिमारग मोरा।।

—(श्रीरामचरितमानस)

अतः मृत्युञ्जयमन्त्र के स्थान पर कोई रुद्र का मन्त्र तथा रुद्रगायत्री मन्त्र भी जप कर ले तो उसका कल्याण हो जाता है। यह मन्त्र—

ॐतत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।।

—(रुद्रगायत्रीमन्त्र)

'पुरिशेते इति पुरुषः' अर्थात् नव द्वार और नवपुरों का देश इस शरीर में चैतन्य-प्रकाशरूप में तिल में तेल, दुग्ध में घृत, ईख में रस की भाँति यह समस्त शरीर व्यापी आत्मा स्वंज्योतिः स्वरूप इसी देह में देही के रूप में निवास करता है। शरीर पुरानी-वृद्ध हो जाने पर यह आत्मारूपी स्वयं प्रकाश शिव आत्मा पुरानी शरीर त्याग कर नई शरीर धारण कर लेती है। ऐसे तत्-पुरुष-आत्मस्वरूप महादेव सृष्टि की आत्मा शिव का मैं यजन सर्वथा शरण ग्रहण करता हूँ। तत्—वह अचिन्त्य अव्यक्त आत्मा नः हम सभी पर प्रचोदयात्—सर्वथा अनुकूल हो जाँय। इस प्रकार यह शिव का गायत्रीमन्त्र भी मृत्युञ्जयमन्त्र के ही समान ही है।

●

हनुमान जी के अमोघमन्त्र

रुद्र देह तजि नेह वस बानर भे हनुमान्।।

—(गोस्वामीतुलसीदास, दोहावली)

अर्थात् श्रीरामावतार में भगवान् रुद्र ने ही रावण को बार-बार मना करने के बाद भी जब अन्याय करना नहीं छोड़ा तब भगवान मृत्युञ्जय ही अपने ग्यारहवें रूप में अज-अविनाशी, निर्गुण-निराकार होते हुये भी बानर

की शरीर में हनुमान जी के रूप में अवतार ले लिये। श्रीराम के द्वारा रावण के वध में श्री हनुमान जी ही कारण भी बन गये। इस रहस्य को वायुपुराण में भी वेदव्यास जी ने इस रूप में लिखा है। जैसे—

आश्विन्यामसिते पक्षे स्वात्यां भौमे चतुर्दशी।
मेषलग्नेऽञ्जनागर्भात् स्वयं जातो हरः शिवः ।।

—(वायुपुराण)

अर्थात् कार्तिकमास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन मङ्गलवार को सायं मेषलग्न में माता अञ्जना के गर्भ से स्वयं भगवान शिव ने ही बानर बालक के रूप में अवतार लिया है। इसीलिये हनुमान् जी रुद्ररूप हैं। वह अपने भक्त के समस्त संकट दूर कर भक्त का सभी प्रकार से मङ्गल (कल्याण) करते हैं। अपनें जीवन में सफलता की शिखर पर पहुँचे बहुत से विद्वान्, महाकवि, सिद्ध, व्यास, कवि, नेता, वक्ता, आई.ए.एस., पी.सी.एस., उच्च योग्य अधिकारी नेता आदि हो चुके हैं।

हनुमान् जी की आराधना का स्वतन्त्र तन्त्र हनुमदागमदर्शन है, जिसे 'हनुमदागम' कहा जाता है। ऐतिहासिक तथ्य है कि काशी में भदैनी मुहल्ले के तुलसीघाट पर गङ्गातट पर रहते हुये गङ्गास्नान के बाद एकाग्र हो रामनाम जपतेहुये श्रीगोस्वामीतुलसीदास जी को हनुमान् जी ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया था। हनुमान् जी की प्रेरणा से नीचीबाग के राजमार्ग सड़क पर ब्रह्मबेला में अद्भुत घोड़ों पर सवार श्रीरामजी के साथ चारों भाइयों का दर्शन हुआ था। यह भी प्रमाणित है कि दशाश्वमेधघाट पर रामकथा सुनते हुये तुलसीदास जी को हनुमान् जी पहले कोढ़ी के वेष में मिले थे। वहीं से अपने साथ सङ्कटमोचन नामक घोर जङ्गल में ले जाकर वहीं पत्थर की मूर्ति में अन्तर्ध्यान हो गये। इस प्रकार हनुमान जी ने श्रीराम-चरितमानस लिखने में गोस्वामी तुलसीदास जी को जो स्थान-स्थान पर सहयोग किया है। इसीलिये श्रीरामचरितमानस में भवानी और शङ्कर जी की स्तुति के बाद उन्होंने आदिकाव्य प्रणेता प्राचेतस् ब्रह्मर्षि वाल्मीकि जी तथा हनुमान जी की भी स्तुति इस प्रकार की है।

'वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ ।।'

—(श्रीरामचरितमानस, बालकण्ड)

विशुद्ध निर्मलज्ञान के प्रदाता महर्षि वाल्मीकिकृत 'रामायण' के आधार पर श्रीरामचरितमानस के साथ ही श्रीहनुमान चालीसा, विनयपत्रिका, कविता-वली, गीतावली, दोहावली, जानकीमङ्गल, पार्वती विवाह पर पार्वती-मङ्गल के साथ ही अनेक शास्त्रीय, पद, भजन आदि भी गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है। हनुमान चालीसा की फलश्रुति में तुलसीदास ने बाबा विश्वनाथ जी का शपथ खाकर १०८ बार पाठ करने से सभी कामनाओं की सिद्धि होने का सन्देश दिया है।

जो यह पढ़े हनुमान चालीसा। होई सिद्धि साखी गौरीशा॥
यह सतबार पाठ कर जोई। छूटहिं बंदि महासुख होई॥

तथा—

रामदुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा विन पैसारे॥

—(हनुमान चालीसा)

ऐसा लिखकर श्रीहनुमान जी का महत्त्व बताया है। वैसे तुलसी दास जी की सभी चौपाई, दोहा, सोरठा, छन्द, छप्पय, आनुष्ठानिक महत्त्व के हैं। सुन्दरकाण्ड का तो कहना ही क्या?

महाबली हनुमान् जी भगवान सूर्य के रथ के आगे से पीछे-पीछे चलते हुये कुल इकतालीस दिनों मैं भगवान सूर्यनारायण से चारों वेद, व्याकरण, ज्योतिष, छन्दशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, सभी दर्शन, स्मृतियाँ, धर्मशास्त्र, कल्प-यज्ञविधान, योग-तन्त्र, भक्ति आदि का ज्ञान प्राप्त कर अपने गुरु भगवान सूर्य के आदेश से सूर्यपुत्र वानरराज सुग्रीव के सचिव-रक्षक-सहायक बन गये। इनका शत्रुनाश के लिये 'लाँगूलशत्रुञ्जयस्तोत्र' भक्त के सभी प्रकार से शत्रुओं को मारकर रक्षा करता है। इनसे कलियुग काँपता है। श्रीराम की आज्ञा से यह सभी कल्पों में शरीर से भक्ति, ज्ञान और कर्म का उपदेश देते हैं। इनके लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं है। एकमुख, पञ्चमुख और एकादशमुखी हनुमत् कवच भक्तों का सब प्रकार से कल्याणकारण हैं। हनुमान जी योगी तथा भक्त होने के कारण रात्रि में सोते नहीं हैं। जागकर भक्त-साधु-सन्त-योगियों की सब प्रकार से रक्षा करते हैं। इसीलिये 'शिवाजीराव' ने महाराष्ट्र में गावों-गावों में अखाड़ा और हनुमान् जी के मन्दिर बनवाया था। भारतवर्ष के हर शहर गाँव-गाँवों के कोने-कोने में

हनुमान जी का मन्दिर देखने को मिलते हैं। इतना ही नहीं यात्रा अथवा कहीं भी हनुमान चालीसा पढ़ते रहने से कोई दुर्घटना नहीं होती।

हम यहाँ हनुमान् जी के दो मन्त्र के साथ हनुमत्गायत्री का मन्त्र लिख रहे हैं। हो सके तो कोई ग्रहण लगे तो उसमें कम से कम १० हजार मन्त्र जप कर हवन कर लें, इस प्रकार ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जायेगा।

मन्त्र संख्या-१—'ॐ हं हं हनुमते रुद्रात्मने हुँ फट्।'

यह मन्त्र चोरों, शत्रुओं, विरोधियों के आक्रमण, षडयन्त्र, कुचक्र आदि से सर्वथा रक्षा कर शत्रुओं का सर्वथा नाश या घबराकर बाहर भगा देता है। हनुमान जी का मन्त्र जपने वाले को शुभस्वप्न अथवा अपने आगे-आगे गदा लेकर चलने का आभास होने लगता है। निरन्तर मन्त्र के जप से व्यक्ति सर्वथा निर्भय हो जाता है।

मन्त्र संख्या-२—'ॐ हं हं हनुमते रुद्रात्मने नमः।' यह मन्त्र व्यक्ति का सदा सभी प्रकार से कल्याणकारी तथा सफलता, सम्मान प्रदाता तथा चिन्ता को मुक्त कर देता है।

मन्त्र संख्या-३—हनुमान जी का गायत्री मन्त्र—

ॐ आञ्जनेयाय विद्महे वायुपुत्राय धीमहि।
तन्नो हनुमत्प्रचोदयात्॥

यह सर्वविदित है कि देवता की सभी शक्ति गायत्रीमन्त्रों में केन्द्रित हो जातीं हैं। अतः सभी देवों के गायत्री मन्त्र भी हैं।

आगे हम वाल्मीकिरामायण एवं अन्यत्र से संगृहीत हनुमान् जी की कुछ दुर्लभ स्तुतियों को लिख रहे हैं, जिन्हें प्रातःकाल उठने-सोने, यात्रा, युद्ध अथवा किसी कार्य के करने के पूर्व ध्यान से पढ़ने से दिनभर, रात्रिभर अथवा कार्य हो जाने तक सफलता मिलती रहती है।

मन्त्र—१

हनुमन्नञ्जनी सूनो वायुपुत्रो महाबलः।
रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः॥१॥

व्याख्या—मैं ऐसे हनुमान् जी की स्तुति करता हूँ जो माता अञ्जना तथा केसरी नामक बानरराज के महाबलशाली एकमात्र पुत्र हैं। श्रीराम के

सबसे प्रिय जनों में जो प्रमुख हैं। महाभारत के संग्राम के समय दिव्य ब्रह्मात्र आदि से अर्जुन की रक्षा के लिये जिन्हें भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के रथ की ध्वजा पर आवाहन कर बैठा दिया था। इसी से अठारह दिनों में महाभारत के संग्राम में सबके पितामह और भगवान परशुराम जी के परमशिष्य महात्मा भीष्मपितामह के तथा गुरु द्रोणाचार्य एवं महावीर कर्ण आदि भगवान परशुराज जी से ही प्राप्त मन्त्रों के प्रयोग से सभी दिव्यास्त्रों को हनुमान जी ही अर्जुन के ध्वज में बैठे हुये उन सभी बाणों को पकड़ कर निष्फल कर देते थे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जन्म के समय अत्यन्त भूखे और माता अञ्जना के दूध से पेट न भरने के कारण माता से हिमालय पर बने आश्रम जो प्रसिद्धतीर्थ हरिद्वार नीलगङ्गा के पूर्वभाग में भगवती चण्डी देवी के मन्दिर के पास आज भी स्थित है, यह स्थान। 'विजनौर' जनपद के इस शिखर के समीप आज भी स्थित है। यहीं माता अञ्जना के तप से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने अपने बल के वीर्य को माता अञ्जना के कानों में आशीर्वाद के रूप में फूँक दिया था। यह सभी कथा वाल्मीकि रामायण में द्रष्टव्य है। पर्वत के उस खण्ड का नाम भी 'साम्बसादन' है। यह ऐतिहासिक तथ्य आज भी गवेषणीय है। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदास ने अपने हनुमान चालीसा के पहले ही—

संकर सुनव केशरी नन्दन। तेज प्रताप महाजगवन्दन।।

—(हनुमान चालीसा)

ऐसा लिखा है। साम्बसादन पर्वत के पके आम आदि फलों के खाने से तृप्ति नहीं होने पर बालक हनुमान् उगते सूर्य को ही लाल बड़ा फल समझ कर खाने के लिये उछल पड़े थे। देखें—

तदोद्यन्तं विवस्वन्तं जपापुष्पोत्करोपमम्।
ददर्श फललोभाच्च ह्युत्पपात रविं प्रति।। इति।

—(वाल्मीकी रामायण, उ० का०, ३५/२३)

इस प्रकार उगते बालसूर्य की ओर मुँह किये मूर्तिमान् बालसूर्य के समान बालक हनुमान् जी उगते हुये सूर्य को फकड़ने की इच्छा से आकाश में भगवान सूर्य की ओर मुख कर वायुवेग से उड़ते चले जा रहे थे।

बालकों मुखो बालो बालार्क इव मूर्तिमान् ।
ग्रहीतकामो बालार्कं प्लवतेऽम्बरमध्यगः ।।

—(वा० रा०, उ० का०, ३५/२४)

भगवान श्रीराम को राक्षसों का संहार कर देने पर उन्हें धन्यवाद देने के लिंये आये ऋषियों-मुनियों से श्रीराम ने पूछा था कि हनुमान् जी के अमित बल पराक्रम रहने पर भी सुग्रीव के शत्रु बालि को हनुमान जी ने क्यों नहीं मारा ? तब दक्षिण से आये महर्षि अगस्त्य जी ने भगवान् राम से वाल्मीकि रामायण के अन्तिम उत्तरकाण्ड के सम्पूर्ण पैंतीस और छत्तीसवें सर्गों में हनुमान् जी का जन्म, विद्या, माता-पिता का परिचय, इन्द्र द्वारा वज्र मारने से बेहोश बालक को लेकर पवन देवता का कोप कर अपनी गति रोक लेने से समग्र सृष्टि का प्राणसङ्कट, चित्कार करने पर, ब्रह्मा जी इन्द्रादि देवों सहित हिमालय पर अञ्जना के आश्रम पर सभी देवों-दानवों की प्रार्थना पर मूर्छित बालक को ब्रह्मा जी द्वारा होश देकर समग्र शरीर पर हाथ फेर कर बालक हनुमान् का शरीर वज्र का बनाना, ब्रह्मास्त्र से अवध्य होना, सभी देवों, दानवों, सर्पों-नागों आदि के शास्त्रास्त्रों, भूख-प्यास आदि से हनुमान् को अवध्य बना देने की कथा विस्तार से वर्णित है। इसी प्रसङ्ग में गुरुओं-मुनियों के आश्रम में विद्याध्ययन करते हुये सबसे तेज होने के कारण हनुमान् जी पर सबका स्नेह था, किन्तु स्वभाव से चञ्चल होने और बल के घमण्ड में साधुओं के वल्कल फाड़ देने, वृक्षों के ऊपर टाँग देने, पात्रों, कमण्डलों को जल में डुबा देने से आजीज गुरुओं के मना करने पर भी बालस्वभाववश न मानने पर क्रुद्ध होकर गुरुओं, मुनियों ने बालक हनुमान को अपना पराक्रम भूल जाने का शाप दे देने के कारण हनुमान् डरपोक, भयभीत, अत्यन्त विनम्र हो गये थे। जब श्रीराम के वनवास में रावण द्वारा अपहरण कर भगवती सीता जी को लङ्का में लेकर जाने की खबर पर खोजने जाने के समय रामावतार में ब्रह्मा जी के ही अवतार ऋच्छराज जामवन्त जी ने हनुमान् जी को उनके बल और अद्भुत पराक्रम का ज्ञान कराया, तब गुरुओं-मुनियों का शाप मुक्त हो गया और हनुमान् जी अमित-बल-बुद्धि, ज्ञान, उत्साह और पराक्रम के मानदण्ड बन गये। वाल्मीकि रामायण का यह प्रसङ्ग देखकर सबको हनुमान् जी के माहात्म्य का ज्ञान हो जायेगा।

ऐसे ही माहात्म्य के यह चार मन्त्र ऐसे हैं, जिन्हें प्रातः जागते, रात्रि में सोते, यात्रारम्भ, किसी कार्य का शुभारम्भ, लड़ाई, वाद-विवाद, मुकदमें में पढ़कर यात्रा करने से व्यक्ति का सभी काम बन जाता है। इसी को ऊपर पहला मन्त्र लिखा गया है। मन्त्र का अर्थ—उस महाबली हनुमान् जी का जय होना अपना जय करना है।

मन्त्र–१

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥१॥

व्याख्या—बल के समुद्र, सभी अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता, राक्षसों का समूल निर्मूलन करने वाले, महाराजा श्रीराम और लक्ष्मण जी की जय हो। वानरराज सुग्रीव जो राजा राम द्वारा रक्षित हैं, उनकी भी सदा जय, सर्वदा विजय हो।

मन्त्र–२

रामेष्टः फाल्गुनसखः सीताशोकविनाशनः।
लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा॥२॥

व्याख्या—श्रीहनुमान जी कहते हैं—मेरे इष्ट (उपास्य) श्रीराम हैं, मैं द्वापरयुग में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रियमित्र और सदा सभी आज्ञा को मानने वाले, गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन का कल्याणकारी मित्र हूँ। मैं राम के वियोग में विरह की अग्नि में जलने वाली परमसती सीता माता की शोक-चिन्ता को मिटाने वाला हूँ। श्रीलक्ष्मण जी का मेघनाद की प्राणघातिनीशक्ति (वर्छी) से बेहोश होने पर उनके प्राणों की रक्षा के लिये वैद्यराज सुषेण के द्वारा बताई गयी सञ्जीवनी बूटी को न पहचानने के कारण पर्वत-खण्ड को उखाड़ कर चार प्रकार की सञ्जीविनीबूटी-सन्धानकरणी, विशल्यकरणी, सौवर्णकरणी और सञ्जीविनी बूटी को हिमालय पर्वत से रातों रात सूर्योदय से पहले लङ्का लाकर श्रीलक्ष्मण जी का प्राण बचाने वाला, तथा सभी प्रकार से गर्वोन्नत, घमण्डी और दुराग्रही राक्षसराज रावण के सभी घमण्डों को चूर-चूर कर देने वाला अञ्जना माँ को आनन्दित करने वाला, माँ के दूध की रक्षा करने वाला एकमात्र अखण्ड ब्रह्मचारी पुत्र हूँ॥२॥

मन्त्र–३

उदधिक्रमणश्चैव पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः ।
हनुमांश्छत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥३॥ इति ।

व्याख्या—भगवती सीता की खोज के लिये सौ योजन अर्थात् चार सौ कोश अपार समुद्र को लाँघ कर श्रीलङ्का पहुँचकर सुग्रीव सहित श्रीराम का प्रिय कार्य करने वाला, पीली सोने के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाला अतुलनीय बलवाला मैं समस्त शत्रुओं को उनकी सेनासहित विनष्ट करने वाला वायुदेवता का औरस पुत्र मारुतिनन्दन नामक हनुमान् हूँ ॥३॥

मन्त्र–४

एवं द्वादशनामानि कपीन्द्रस्य महात्मनः ।
श्वापकाले प्रबोधे च यात्राकले च यः पठेत् ॥४॥

मन्त्र–५

तस्य सर्वभयं नास्ति रणे च विजयी भवेत् ।
राजद्वारे गह्वरे च भयं नास्ति कदाचन ॥५॥

व्याख्या—इस प्रकार मेरे चार मन्त्रों में कहे गये मेरे गुण-धर्म से युक्त जो कोई भी व्यक्ति इन बारह नामों को प्रातः जगते हुये, रात्रि में सोने से पहले, यात्रा, जेल जाने अथवा कोई भी कार्य करने से पहले पढ़ लेता है तो उसे किसी प्रकार का भय नहीं रहता। चाहे न्यायालय का सम्मन हो, राजा के स्थान पर वर्तमान में न्यायाधीश अथवा सर्वोच्च अधिकारी के यहाँ विवादों में बुलाहट हो तथा किसी प्रकार का विकट सङ्कट हो, भक्त को कहीं से किसी से भी इन नामों के मन्त्रों का पाठ कर लेने पर किसी भी प्रकार का भय-सङ्कट आदि नहीं आता है ॥४-५॥

श्रीहनुमन्मन्त्रस्तोत्र-संख्या- २

मन्त्र–१

आपदामपहर्त्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्हम् ॥१॥
उद्भवस्थिति संहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥२॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय,
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो,
नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद् गणेभ्यः ॥३॥
जयत्यतिबलो राम लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥४॥
न रावणसहस्त्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्त्रशः ॥५॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥६॥
दीनानुकम्पी धर्मात्मा प्रेमाब्धे रामवल्लभ।
यदेव मारुते वीर! मेऽभीष्टं देहि सत्त्वरम् ॥७॥

व्याख्या—उपर्युक्त मन्त्र अत्यन्त सिद्ध और अनुभव किये गये हैं। इनके पाठ से भक्त पर हनुमान जी की सर्वदा दया बनी रहती है। भक्त का कार्य विना किसी कठिनाई के हो जाते हैं। इन मन्त्रों में भगवान श्रीराम, भगवती सीता, लक्ष्मण जी, शिव, इन्द्रादिदेव, मरुद्गण, सूर्य-चन्द्र, यमराज आदि देवों का प्रणाम पूर्वक श्रीराम के भक्त महावीर हनुमान् का पराक्रम, सुग्रीव की भी वन्दना, लङ्का का विध्वंस, हनुमान् के अपरिमेय पराक्रम, रावण की शक्ति का उपहास, समुद्रलंघन, सीता जी की सतीत्व का वर्णन कर अन्त में दीन-दुःखियों पर बराबर कृपा बनाये रहने, प्रेमभक्ति के समुद्र हनुमान जी से साधक द्वारा अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये कृपा की दयनीय कामना की गई है। आप भी नित्य इन मन्त्रों का यथाकाल पाठ कर इन मन्त्रों के पाठ के फल का अनुभव कर सकते हैं।

इसके इतर कामनाओं की सिद्धि के अनेक उपाय हैं, किन्तु तन्त्रशास्त्र की गोपनीयता के आदेश का पालन कराना भी आवश्यक है। हमनें साहस कर कुछ प्रयोग विद्या की रक्षा और लोगों के कल्याण के लिए लिख दिया है। यदि किसी की विशेष जिज्ञासा हो तो वह दीक्षा लेकर उन-उन उपायों को जान सकता है। यह सभी प्रयास काशीविश्वनाथ तथा अन्नपूर्णा जी के चरणों में समर्पित है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।।
ॐ शान्तिः ! शान्ति !! शान्तिः ।।

गणपति मन्त्र

पुनश्च—

आप सभी को ज्ञात है कि किसी भी पूजा, अनुष्ठान, मन्त्रजप, शुभकार्य, विवाहादि में गणेश जी की पूजा सर्वप्रथम होती है। प्रथम पूज्य की परीक्षा में सभी देवों के आग्रह पर स्वयं महादेव और भगवती पार्वती ने परीक्षा लिया था। कुशाग्रबुद्धि, मातृभक्त गणेश जी इस परीक्षा की घड़ी में सबसे कमजोर थे। भारी पेट, भारी भरकम शरीर और वाहन मूस। जब परीक्षा के लिये शिवशक्ति ने यह निश्चय किया कि इस समस्त पृथ्वी का सभी पर्वत, जङ्गल, सागर समेत इसका जो सात परिक्रमा कर सर्वप्रथम लौटेगा वह विजयी होगा, उसी की सर्वप्रथम पूजा होगी। बस क्या था? शिव-पार्वती के प्रथम पुत्र स्वामी कार्तिकेय अपने मोर पर परिक्रमा करने चल दिये। विष्णु गरुड़ पर, ब्रह्मा जी हंस पर, देवराज इन्द्र सातमुख के घोड़े उचैःश्रवा पर जो समुद्रमन्थन से उन्हें उत्पन्न है तथा मन की गति के समान जिसकी गति है, ऐसे घोड़े पर सवार होकर विजय की इच्छा से चल पड़े। इसी प्रकार वायु, अग्नि आदि देवं भी विजयी होने के लिये दौड़ पड़े।

बेचारे गणेश जी सोचने लगे कि मैं तो इस चूहा की सवारी से सात जन्म में भी इस समस्त सृष्टि की परिक्रमा नहीं कर सकूँगा। अतः सोच-विचार कर समस्त सृष्टि के मूल तथा समस्त सृष्टि के चक्रवर्ती नरेश श्रीराम का निरन्तर जप करने वाले अपने पिता महादेव तथा जगद्वन्द्य जननी पार्वती को ही सृष्टि का मूल मानकर चूहे को पुचकार कर माता-पिता की सात परिक्रमा कर दोनों के आगे हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। माता-पिता दोनों पुत्र की इस बुद्धिमानी पर पुलकित होकर मन्द-मन्द मुस्काते रहे। थोड़ी ही देर में परिक्रमा कर स्वामी कार्तिकेय जिनका स्कन्द और छः मुख होने के कारण एक नाम षडानन भी है, आकर खड़े हो गये। पुनः भगवान विष्णु,

ब्रह्मा जी, इन्द्र, वायु, अग्निदेव इस धरा की सात परिक्रमा कर खड़े हो गये। सब उत्सुकता से परीक्षा का परिणाम जानने को आतुर थे।

इसके बाद शिव-पार्वती मुस्करा कर अपना निर्णय सुनाते हुये श्रीगणेश जी को प्रथम होने का फैसला सुनाते हुये सर्वप्रथम गणेश जी की पूजा और स्तुति करने का निर्णय सुना दिये। सभी देवता इस निर्णय का स्वागत करते हुये गणेश जी का पूजन-अभिनन्दन किये। इससे बड़े पुत्र कार्तिकेय नाराज थे, किन्तु माता-पिता के द्वारा रहस्य समझाने तथा शारीरिक बल से बुद्धिमान् के अधिक बलशाली होने से वह भी निर्णय को स्वीकार कर लिये। तब से ही सभी कार्यों में गणपति का प्रथम पूजन होता आ रहा है। अतः गणेश जी के नीचे लिखे बारह नामों का प्रातः स्मरण कर लेने वाले व्यक्ति का समग्र दिन-रात्रि मङ्गलमय हो जाता है।

गणेश जी के बारह नाम

ॐ समुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥१॥
धुम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननाः।
द्वादेशैतानि नामानि यः पठेच्छुश्रुयादपि॥२॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे सङ्कटे चैव, विघ्नस्तस्य च जायते॥३॥ इति।

अर्थ—भगवान गणेशजी के यह बारह नाम सुमुख-सुन्दर सफेद गज बालक का सुन्दर मुख, दो दातों में एक दाँत बाल्यकाल में ही कैलास पहुँचे परशुराम जी को माता का दर्शन न कर देने के कारण क्रुद्ध परशुराम जी ने काट दिये तबसे गणेश जी का एक नाम एकदन्त हो गया। कपिल—पीले वर्ण, हाथी का कान—गजकर्ण, लम्बोदर—बड़ा तोंदवाले, समस्त जगत् गणेश जी के पेट में होने तथा खूब लड्डू खाने से एक नाम लम्बोदर भी है। विकट-शत्रुओं के लिये अपने तीक्ष्ण अंकुश से मार देने तथा विकट दाँत गड़ा कर भक्त के शत्रुओं को नष्ट कर देने वाले, समस्त विघ्नस्वरूप विपत्तियों का नाश करने से एक नाम विघ्ननाशक, सर्वोत्तम नायक शिवगणों के अगुवा-सेनापति होने से एक नाम विनायक, धुवें के समान श्याम रंग का ध्वज होने से धूम्रकेतु, प्रमथादि शिवगणों के अग्रगण्य होने से गणाध्यक्ष,

विशालभाल पर अर्धचन्द्र के कारण भालचन्द्र एवं श्वेत हाथी के शिशु का शिर लगाकर भगवान शिव द्वारा पुनः जीवित कर देने के कारण एक नाम गजानन है। इस प्रकर भगवान् गणेश जी के यह बारह नाम विद्याध्ययन, संस्कार के प्रारम्भ में, विवाहादि तथा कहीं यात्रा, गृह अथवा अपने निश्चित कार्यस्थल घर, अध्ययनाध्यापन, कार्यालय, भाषण के पूर्व आदि सभी कार्यों के करने के पूर्व उपर्युक्त यदि इन बारह नामों को स्वयं पढ़ लेने अथवा किसी से पढ़वा कर कार्यारम्भ करने पर, संग्राम, सङ्कट आदि अवसरों में नित्य प्रातः स्मरण से व्यक्ति कोई भी किसी भी प्रकार की विघ्न-बाधा से सर्वथा मुक्त होकर अपना कार्य निर्विघ्न पूर्ण कर लेता है।

भगवान गणेश के नाम का प्रथम अक्षर गकार गन्धर्वविद्या, गायन, गणित, गणना आदि सभी स्थितियों में मात्र गं गं कहा जाय तब भी सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इसीलिए ये गुरु शब्द का गकार गुरु के समान ही कल्याणकारी है। माघ का महीना प्रायः जनवरी मास में पड़ता है। इस प्रकार माघ मास के कृष्णपक्ष की चतुर्थी तिथि दिन बुधवार को गणेश जी का जन्म हुआ है। इस चतुर्थी तिथि को संकष्टी चतुर्थी कहते हैं। इस तिथि के दिन गणपतिपूजन, पुत्र की कामना से व्रत रहने तथा प्रतिमास के चतुर्थी तिथि को इस दिन व्रत रहने से व्यक्ति का सभी मनोरथ पूर्ण हो जाता है। गणेश जी माता पार्वती के अनन्य मातृभक्त पुत्र हैं। माता की आज्ञा से ही भगवान् शिव को भी भीतर प्रवेश न करने देने के कारण बार-बार मना करने पर भी टस-से-मस न होने के कारण ही शिव ने अपने त्रिशूल से भगवान बाल गणेश का शिर काट दिया था। इससे भगवती पार्वती क्रुद्ध हो महा-काली का रूप धारण कर जगत् के संहार के लिये तैयार हो गईं। घबराये शिव ने तत्काल उत्पन्न श्वेत हाथी के बच्चे को सामने देख कर उसका ही शिर काटकर पुत्र गणेश जी के शरीर पर अमृत सञ्जीवनी विद्या से शिर जोड़ कर पुनः जीवित कर दिया। इससे शान्ति सहित संहार के लिये उद्यत महाकाली शान्त हो गईं। माता पार्वती, पिता, महादेव के आशीर्वाद के साथ ही ब्रह्मा-विष्णु आदि गणों ने गणेश जी को अपनी सभी शक्तियाँ समर्पित कर दिया। गणेशजी माता-पिता की अखण्ड सेवा के कारण ही सर्वप्रथम पूज्य और सर्वश्रेष्ठ देव हैं। हाथी जङ्गली जानवर होने के बाद भी सभी जानवरों में सबसे बलशाली और बुद्धिमान होता है। प्राचीन भारतवर्ष में

हाथियों पर सवार होकर युद्ध लड़े जाते थे। हाथी भी गणेश जी के समान मङ्गलदायक है। स्वप्न में हाथी की सवारी, हाथी का दर्शन भी शुभ होता है। विवाहादि में हाथी की भी पूजा का विधान भारतवर्ष में था और आज भी है।

गणेश जी देवों के ज्यौतिषी भी हैं। इनका ब्राह्मण स्वभाव है। लड्डू, केला, कैंथ तथा जामुन का फल भी गणेश जी के साथ हाथी को भी प्रिय है। तेज दिमाग के कारण ही गणेश प्रथम पूज्य हैं।

इनकी आराधना, दर्शन, गणपत्यर्थशीर्ष का नित्य पाठ, गणेशसहस्त्रनाम का पाठ, बुधवार को बारह दूर्वादलों से तथा नित्य भी समर्पित करने से सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। हाथी दाँत की अंगूठी, गणेशपुराण का पाठ, अनुष्ठान, स्वस्तिकचक्र, 'ॐ गं गणपतये नमः' मन्त्र का जप, चतुर्थीव्रत, माता-पिता की सेवा आदि से गणेश जी सर्वदा प्रसन्न रहकर भक्त की सभी मनोकामना पूर्ण कर देते हैं वैसे सम्पूर्ण जगत् में गणेश जी सर्वपूज्य हैं, तथापि भारतवर्ष राष्ट्र के भीतर महाराष्ट्र में गणपतिपूजन का विशेष प्रचलन है।

भगवान् गणपति का गायत्रीमन्त्र सभी पूजन के प्रारम्भ और अन्त में बोला जाता है। इसकी भी महिमा अपार है। यह मन्त्र—

ॐ एकदन्ताय विद्महे वक्त्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।। है।

इस प्रकार स्वतन्त्र भी गणपति गायत्री मन्त्र जप की भी असीम महिमा है। गं गं गं कहता हुआ व्यक्ति सभी दुष्कर पीड़ा को सहज ही पार कर असीम सुख-शान्ति प्राप्त कर लेता है।

●

विवाह के लिये स्वयंवरामन्त्र के प्रयोग का विधान

दो वर्ष पूर्व एक अनन्य सम्बन्धी के संयुक्तराज अमेरिका देश के कैलफोर्निया प्रान्त की राजधानी में पुत्र सम्मानित साफ्टवेयर इन्जीनियर हैं, किन्तु अनेक उपाय करने के बाद भी वह विवाह नहीं कर सके हैं। सम्बन्धी के दो अत्यन्त योग्य और प्रतिष्ठित पद पर अधिकारी के रूप में नियुक्त पुत्रों

में ज्येष्ठपुत्र दिल्ली के पास एक कम्पनी के विशिष्ट पद पर नियुक्त हैं। उन्हें मात्र दो लड़कियाँ हैं। सम्बन्धी पति-पत्नी वृद्ध और कुल की भावी पीढ़ी के समाप्त हो जाने के भय से बेहद चिन्तित और दुःखी रहते हैं। छोटे पुत्र के यहाँ माता पिता जाकर पुत्र को विवाह कर लेने के बहुत प्रयास किये, किन्तु भारतीय सनातन पद्धति से रहने वाला पुत्र कत्तई विवाह के लिये तैयार नहीं है। अनेक अनुष्ठान-पूजा भी हुये, किन्तु सभी निष्फल। अपने किसी सम्बन्धी के यहाँ गये। सम्बन्धी को वहाँ के पण्डितों से ज्ञात हुआ कि पुत्र की शादी के लिये यदि स्वयम्बरा विद्या का प्रयोग हो तो लड़का अवश्य विवाह कर पुत्र प्राप्त कर सकता है। पण्डितों ने तो उपाय बता दिया किन्तु मन्त्र कोई नहीं बता पाया। इसी विषय में रुचि तथा अध्ययन-अध्यापन करने के कारण जब मुझे ज्ञात हुआ तो मन्त्र एवं उसके प्रियोग की विधि की खोज करने लगा। लगभग एक वर्ष तक मन्त्रमहार्णव, पुरश्चर्यार्णव, शाक्तानन्दतरङ्गणी, शाक्त-प्रमोद, सभी मन्त्रकोष तथा मन्त्रों के अनेक ग्रन्थ, पुरश्चरण कराने वाले विशेषज्ञों से भी जब यह मन्त्र नहीं मिला तब मुझे यह आशङ्का होने लगी कि वस्तुतः स्वयम्वराविद्या प्रकाशित है या गुप्त रहते-रहते लुप्त हो गई है। निरन्तर अन्वेषण जारी रहा। अन्त में यह ऊहापोह होता रहा कि जब 'मन्त्रजातमशेषन्तु ईशानात्तु प्रकाशितम्' अर्थात् अनन्त मन्त्रराशि भगवान् शिव के मुखों से प्रकट हुये हैं तो स्वयम्वरामन्त्र न होने का कोई कारण होगा, पुनः खोजना चाहिये। इस विश्वास के साथ पुनः पुराणों सहित सम्भावित ग्रन्थों का आलोडन करते हुये मुम्बई महानगर महाराष्ट्र के 'श्री खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई' से प्रकाशित मन्त्र-महोदधि नामक ग्रन्थ के पृष्ठ छठवें तरङ्ग के ४७वें पृष्ठ के 'रेणुकाशबरी-विद्यामन्त्र' के 'ध्यानं जपपूजाविधानं च' के अनुसार इस प्रकरण के श्लोक की संख्या ५१ से श्लोक संख्या ६१ तक मूलरूप में मन्त्रोपदेश किया गया है। इस मन्त्र का उपदेश सर्वप्रथम ब्रह्माजी, तदनन्तर इस मन्त्र का दर्शन भगवान परशुराम जी की माता रेणुका जी को हुआ था। पुनः उन्होंने इस मधुमती विद्या का ऋषि, छन्द, देवता, ध्यान, विनियोग और न्यास अत्यन्त गुप्तरीति से सांकेतिक रूप से किया है। वैसे मन्त्र के सभी अङ्गों को अलग-अलग जानकर विधा के प्रयोग को विधान करना चाहिये ऐसा बताया गया

है। यथाज्ञान यथाशक्ति मैंने मन्त्रोद्धार कर पचास अक्षरों में संयुक्त अक्षरों के साथ मन्त्र का मूल स्वरूप जो अस्पष्ट अधोलिखित है—

प्रोदिता शाबरीविद्या कलौ त्वरितसिद्धिदा।
अथोच्यते विवाहाप्त्यै स्वयम्वरकला शिवा ॥१॥
तारो माया योगिनीतिद्वयं योगेश्वरी द्वयम्।
योगनिद्रायंकरिस्वात्सकलस्थावरेति च ॥२॥
जङ्गमस्य मुखं प्रोच्य हृदयं मम सं पठेत्।
वशमाकर्षयाकर्षय पवनो वह्निसुन्दरी ॥३॥
पञ्चाशद्वर्णविद्याया मुनिरस्याः पितामहः।
द्वन्द्वेति जगतीदेवी गिरिपुत्री स्वयंवरा ॥४॥
जगत्त्रयेति हृदयं त्रैलोक्येति शिशिमतम्।
उरगेतिशिखासर्वराजेति कवचं तथा ॥५॥
सर्वस्त्रीपुरुषेत्यक्षि सर्वेत्यस्त्रं समीरितम्।
तारमायादिकाविश्यं मोहिन्यैपदपश्चिमाः ॥६॥
षडङ्गमन्त्रा उद्दिष्टा मूलेन व्यापकं चरेत्।
ध्यायेद्देवीं महादेवं वरीतुं समुपागताम् ॥७॥
शम्भुजगन्मोहनरूपपूर्णं विलोक्य लज्जाकुलितांस्मिताम्।
मधूकमालां स्वसखीकराभ्यां संबिभ्रतीमद्रिसुतां भजेऽहम् ॥८॥
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशांशतः।
पायसेनान्नेन जुहुयात्पीठे पूर्वोदिते जपेत् ॥९॥
त्रिकोणचतुरसांमकोणाष्टदलदिग्दलम्।
दिक्कालदन्तपत्राणि चतुष्षष्टिदलं पुनः ॥१०॥
वृत्तत्रयं चतुर्द्वारयुक्तंधरणिकेतनम्।
पूजायन्त्रं प्रकुर्वीत तत्र सम्पूजयेदिमाम् ॥११॥

इस प्रकार ग्रन्थ में अनेक उपाय और मन्त्र वर्णित हैं। यहाँ यह सत्य है कि स्वयम्वराविद्या का ही अनुष्ठान गौरीकुण्ड हिमालय में मन्दाकिनी गङ्गा के तट पर सखियों के साथ रहकर माता पार्वती ने घोर तप कर परमयोगी अजर-अमर, सर्वदेवमय भगवान शङ्कर को पति के रूप में प्राप्त किया है। यह विद्या त्रिकाल सत्य और सनातन है। उपर्युक्त मन्त्र का कलियुग के

प्रमाण के अनुसार चारलाख जप कर कराकर विधिवत् गौ के दूध के बना खीर का हवनकर दशमांश तर्पण मार्जन, ब्राह्मणभोजन कराकर परिश्रम के अनुसार दक्षिणा देने से इष्टसिद्धि अवश्य होगी इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये।

आगे मैंने यथाज्ञान, यथाशास्त्र सूत्ररूप से गुप्तविद्या का मन्त्रोद्धार अङ्गन्यास, विनियोग और ध्यान का मन्त्र लिख दिया है। निश्चय ही इस प्रयास से अनुष्ठाता विद्वानों को लाभ होगा।

अनुष्ठान में सर्वप्रथम यजमान यदि हों तो सपत्नीक सङ्कल्प कर ब्राह्मणों का वरण, पुण्याहवाचन, पीठ पर माता की सुवर्णमूर्ति अथवा ताम्रकलश पर गरी का गोला रख, गणपति पूजनादि कराकर माता की सविधि प्राणप्रतिष्ठा, विविध प्रकार से पूजन कर कराकर शुद्ध मन से अनुष्ठान योग्य सदाचारी विद्वानों से करायें।

सङ्कल्प—सर्वप्रथम सङ्कल्प देश-कलादि का कर लक्ष्य प्राप्ति के लिये सङ्कल्प का योजन के अनुसार सङ्कल्प लें। पुनः वरण, पुण्याहवाचन, नान्दीमुखश्राद्ध करावें।

पुनः ध्यान करें—

ध्यान का मन्त्र—

ध्यायेद्देवीं महादेवं करीतुं समुपागताम्,
शम्भुंजगन्मोहनपूर्णरूपं विलोक्य-
लज्जाकुलितां स्मिताननाम्।
मधूकमालां स्वसखीकराभ्याम्,
संबिभ्रतीमद्रिसुतां भजेऽहम्॥ इति।

मन्त्र का अर्थ—मैं ऐसी तपस्विनी माता कुमारी पार्वती का ध्यान करता हूँ जो अपनी सखियों से घिरी हुई हैं। जो पद्मासन लगाकर गौरीकुण्ड में मन्दाकिनी गङ्गा के तट पर शीतल और शान्त वातावरण में योगी शिव को अपने पति के रूप में प्राप्त करने के लिये सङ्कल्पित हैं। अन्त में तप करते हुये पहले फलाहार, पुनः पत्तों को खाकर, बाद में माता गङ्गा का जल पीकर, पुनः निर्जल रहकर, इसके अनन्तर दोनों बाहुओं को ऊपर आकाश

में उठाकर पैरों के अँगूठों पर खड़ी होकर पुनः प्राण-अपान, समान, उदान और व्यानवायु को एक कर हृदय में प्राणवायु रोककर एकदम सोने की छड़ी की तरह सूखकर कांटा हो गई हैं। ऐसी घोर तपस्या से अखण्ड समाधि में लीन पार्वती के उग्र तप से शिव का आसन डोलने लगता है। भगवान केदारेश्वर विह्वल होकर बाल-ब्रह्मचारी, सुन्दर-कमनीय अत्यन्त गौररूप, त्रैलोक्य को सम्मोहित करते हुये, मृगचर्म पहने, हाथ में पलाश का दण्ड और मृगचर्म लिये हुये माता कुमारी गौरी के आगे आकर खड़े होकर मधुर-मधुर विहंस रहे हैं। गौरी की समाधि खुलती है। उनके होंठ शिव-शिव कहते हुये हिल रहे हैं। वह सुकुमार काम को लजाने वाले किशोर को सामने देखकर लजा जा रही हैं। उनके हाथ में पके हुये पीले-पीले महुवा की पुष्पों की माला है, जिससे यह ज्ञात होता है कि सम्मोहन के लिये यह माला उपयोगी है। हाथ के हिलने, शरीर के रोमाञ्चित हो कांपने के कारण हाथ से स्खलित होती महुवे की माला सखियाँ थाम लेती हैं। ऐसी स्थिति में पहुँची अत्यन्त विस्मित माता कुमारी गौरी का मैं ध्यान करता हूँ।

इस प्रकार ऐसे दृश्य का ध्यान करते हुए अनुष्ठान करने वाले विद्वानों द्वारा स्यम्वरामन्त्र जपना चाहिए। विधि से यन्त्र भी बनाया जा संकता है।

स्वयम्वरामन्त्र—ऊपर ग्रन्थ में रहस्यमयी भाषा में स्वयम्वरामन्त्र का अस्फुट भाषामें श्लोकबद्ध उल्लेख है। अतः मैंने तन्त्रशास्त्र की परम्परा को ध्यान में रखकर मन्त्रोद्धार इस प्रकार किया है—

स्वयम्वरामन्त्र—"ॐ ह्रीं योगिनि योगिनि योगेश्वरि योगेश्वरि योगभयेकरि सकलस्थावरजङ्गमस्य मुखं हृदयं मम वशमाकर्षयाकर्षय स्वाहा।" इस प्रकार संयुक्तअक्षरों को छोड़कर स्वाहा में दो अक्षर सर्वप्रथम प्रणव ॐकार मिलाकर कुल पचास अक्षरों का स्वयम्बरामन्त्र है।

इस प्रकार सावधानी से यजमान के हित को ध्यान में रखकर सङ्कल्प का संयोजन कर षडङ्गन्यास करें।

हृदयादिन्यास—सर्वप्रथम हृदय का स्पर्श करें—**ॐ ह्रीं जगत्त्रयवश्य मोहिनी हृदयाय नमः।** शिर का स्पर्श करें—**ॐ ह्रीं त्रैलोक्यमोहिन्यै शिरसे स्वाहा।** शिखा का स्पर्श—**ॐ ह्रीं उरगवशमोहिन्यै शिखायै वषट्।** दोनों भुजाओं का स्पर्श करें—**ॐ ह्रीं सर्वराजवशमोहिन्यै कवचाय**

हुँम् ।। दोनों नेत्रों का स्पर्श—**ॐ ह्रीं सर्वस्त्रीपुरुषवशमोहिन्यै नेत्रत्रयाय वौषट्** । शरीर के चारों ओर चिटुकी बजा कर सभी मूलमन्त्र से विघ्नों को भगावें। इस प्रकार हृदय से ऊपरीभाग में देवी की शक्ति की स्थापना पूर्ण हुई।

अब दोनों हाथों की अङ्गुलियों में देवी की शक्ति की स्थापना करें—

दोनों अंगूठों का स्पर्श करें—**ॐ ह्रीं जगत्त्रयाय विश्वमोहिन्यै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः** ।

दोनों तर्जनियों का स्पर्श—**ॐ ह्रीं त्रैलोक्यमोहिन्यै तर्जनीभ्यां नमः** ।

दोनों मध्यमा अङ्गुलियों का स्पर्श—**ॐ ह्रीं उरगवश्यमोहिन्यै मध्यमाभ्यां नमः**।

दोनों अनामिका अङ्गुलियों का स्पर्श—**ॐ ह्रीं सर्वराजवश्यमोहिन्यै अनामिकाभ्यां नमः** ।

दोनों कनिष्ठिकाओं का स्पर्श—**ॐ ह्रीं सर्वपुरुषस्त्रीवशमोहिन्यै कनिष्ठिकाभ्यां नमः** ।

दोनों हाथों का अग्र तथा पृष्ठभाग का स्पर्श—

पुनः विनियोग करें—ॐ ह्रीं सर्ववशमोहिन्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।।

ऐसा कह दोनों प्रकार का न्यास कर (रक्षादीप पहले से ही जलता रहेगा) पुनः हाथ अथवा आचमनी से जल लेकर मन्त्र पढ़कर पृथ्वी पर गिरा दें।

विनियोग—

मन्त्र—ॐ अस्य स्वयंवराकलामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः जगतीछन्दः देवगिरिपुत्री स्वयंवरादेवता ममाभीष्ट—(यहाँ लड़का अथवा लड़की का नाम लें) **सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः** । कह कर जल छोड़ दें।

इस प्रकार यह गुप्त स्वयंवराविद्यामन्त्र शास्त्रापदेश में गुप्त रहते हुये भी कुछ ग्रन्थ—'मन्त्रमहोदधितन्त्र' तथा कुछअपनी प्रज्ञा से विचार विमर्श कर सबके कल्याण के लिये यहाँ प्रस्तुत कर दिया गया है। यदि किसी साधक

जिज्ञासु को कुछ कठिनाई हो तो ग्रन्थ लेखक के पते से किसी भी माध्यम से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

•

चोरी का भय मिटाने का मन्त्र

मन्त्र—

ॐ कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजाबहुसहस्त्रवान्।
यस्य स्मरणमात्रेण चौरो गच्छति निष्फलः॥
कफल्लम्, कफल्लम्, कफल्लम्, कफल्लम्॥

अर्थ—सत्ययुग के अन्त में तत्कालीन माहिष्मती के राजा तथा भगवान विष्णु के अंशावतार सहस्त्रवाहु अथवा सहस्रार्जुन राजा के एक हजार हाथ थे। दिग्विजय के लिये लङ्का से निकले राक्षसराज रावण को परास्त कर अपने घुड़सार में बाँध दिये थे। अपने हजार हाथों से नर्मदा नदी में स्नान के समय धारा को रोक देते थे। बाद में बल के घमण्ड में भगवान परशुराम जी के पिता यमदग्नि ऋषि के आश्रम गये। ऋषि ने अपनी नन्दिनी गौ के प्रभाव से सैनिकों सहित राजा का अपूर्व स्वागत किया। प्रभावित होकर राजा ने नन्दिनी को मांगने लगे। आश्रम की सभी गतिविधि बाधित हो जाने के भय से नन्दिनी को देने से मना कर दिये। बल के घमण्ड में क्रोधित होकर महर्षि यमदग्नि का वधकर नन्दिनी को लेकर अपनी राजधानी चले गये।

थोड़े देर में अपने प्रपितामह महर्षि भृगु जी के आश्रम हिमालय पर्वत पर अपनी तपस्या पूर्ण कर भगवान परशुराम जी प्रसन्न भगवान शिव से फरसा नाम का अमोघ अस्त्र प्राप्त कर भगवान शिव को प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त कर पिता जी ऋषि यमदग्नि के आश्रम पर लौट आये। आश्रम में रोती हुई माँ रेणुका देवी और भाईयों को देखकर परशुराम जी क्रोध की ज्वाला में भभक उठे। उठाये फरसा लिये माहिष्मती राजधानी जाकर हजारों भुजायें काटकर राजा का वध कर पुत्रों को राज्य देकर पिता के आश्रम लौटकर शिव के मृत्यु सञ्जीवनी विद्या का प्रयोग कर पिता जी को जीवित कर क्रोध में सभी भारतवर्ष में फैले घमण्डी, अधार्मिक क्षत्रिय राजाओं का इक्कीस बार संहार किये। उस समय के धार्मिक राजा चक्रवर्ती

दशरथ जी तथा मिथिला नरेश राजा जनक जी का पोषण किये। इसी क्रम में भगवान शिव से प्राप्त वैष्णव धनुष राजा जनक जी के पास रख कर धनुष की पूजा करने का आदेश दे लौट गये। बाद में यही धनुष तोड़कर श्रीराम का भगवती सीता जी के साथ विवाह हुआ। मारे गये राजाओं के राज्यों की दान की भूमि लेने वाले ब्राह्मण ही बाद में भूमिहार ब्राह्मण कहलाये। शेष कथा प्रायः सभी जानते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्र चोरी रोकने वाला है। घर का स्वामी रात्रि में सोने से पहले यदि मन्त्र पढ़ ले तो कोई भी चोर चोरी नहीं कर सकता।

●

पेट फूलने, अधिक भोजन कर लेने से होने वाले कष्ट को दूर करने का मन्त्र

मन्त्र—

आतापी भक्षितो येन येन वातापि भक्षितः।
समुद्रः शोषितो येन सो मेऽगस्त्यः प्रसीदतु॥

—(अगस्त्यसंहिता का मन्त्र)

अर्थ—स्मृतिकारों में महर्षि अगस्त्य जी सर्वश्रेष्ठ मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। यद्यपि इनका अवतार—जन्म वर्तमान उत्तरप्रदेश के देवरिया जनपद के सरयू नदी के उत्तर तट पर 'अगस्त्यपार' ग्राम में हुआ था। आज भी वह ग्राम अगस्त्य गोत्रीय ब्राह्मणों का ही है। अगस्त्य गोत्रीय ब्राह्मणों की उपाधि भी 'त्रिपाठी' है। अगस्त्य जी के दीक्षाशिष्य विन्ध्याचलपर्वत हैं। एक बार विन्ध्याचलपर्वत जो ठोस पत्थर के हैं तथा पश्चिम सिन्धुघाटी से लेकर वर्तमान उत्कलप्रान्त 'उड़ीसा' के समुद्र हिन्दसागर के नीलपर्वत तक इनका विस्तार है। प्रसिद्ध पुरी नगरी में भगवान जगन्नाथ ज़ी का प्रसिद्ध मन्दिर तथा विग्रह विशिष्ट काठ का बनाया जाता है। जगन्नाथ जी के बड़े भाई बलराम (बलंभद्र) जी तथा छोटी बहन सुभद्रा जी यहाँ द्वापर युग में प्रभाषक्षेत्र सोमनाथ जी के पास जब यदुवंशीय राजा यदुवंशियों का तिरोधान हो गया तब मात्र अर्जुन ही वहां बचे रह गये। अन्त में व्याध के बाण से भगवान श्रीकृष्ण का भी शापवश तिरोधन हो जाने पर भगवान श्रीकृष्ण का मृत

शरीर को चन्दन की लकड़ी का चिता लगाकर अर्जुन अट्ठारह दिन तक जलाते रहे, किन्तु भगवान का मृतविग्रह जल नहीं पाया। अन्त में विवश होकर अधजले विग्रह को अर्जुन अरबसागर में बहा कर हस्तिनापुर राजधानी लौट गये।

बाद में यही अर्धदग्ध शरीर हिन्दसागर के नीलपर्वत के किनारे आकर बहते-बहते लग गया। रात्रि में वहां के तत्कालीन राजा को रात्रि में स्वप्न हुआ जिसके आधार पर राजा ने उस अर्धदग्ध शरीर को राजधानी पुरी लाकर बढ़ई बुलाकर जगन्नाथ जी की मूर्ति बनाने का आदेश दिया। यह नीम्ब की लकड़ी की तरह के वृक्ष नीलसागर के तट के घने जंगल में बहुत होते हैं। प्रसिद्ध कथा के अनुसार भगवान जगन्नाथ जी के आदेश से बढ़ई के रूप में भगवान विश्वकर्मा जी ही बन्द कमरे में विग्रह बना रहे थे। मनाही के बाद भी निर्माण कक्ष का दरवाजा खोल देने से जगन्नाथ जी की काठ की मूर्ति अधूरी रह गयी। पुनः भगवान के स्वप्न में आदेश पर इस भव्य मूर्ति को भव्य मन्दिर बनवाकर राजा ने प्रतिष्ठित करा दिया। तब से आज तक प्रति बारह वर्ष पर निर्धारित काष्ठ-कलाकारों द्वारा आज तक मूर्तियाँ बनाई तथा पूजित हो रही हैं। एक और गूढ़ रहस्य है। प्रति बारहवर्ष पर बने नये विग्रह के जगन्नाथ जी के नाभि में एक तुलसीदल रखा जाता है जो बारह वर्ष तक नाभि में ताजा और हरा बना रहता है। महर्षि अगस्त्य के विन्ध्याचल प्रसङ्ग में यह कथा आ गई। अतः सुधीजन क्षमा करेंगे।

जब विन्ध्याचल पर्वत एक बार अपना शिर उठाकर ऊपर बढ़ने लगे तब भगवान सूर्य और चन्द्रमा का मार्ग बन्द होने लगा। इस पर सभी देवों, ऋषि-मुनियों ने मिलकर विन्ध्याचल के गुरु अगस्त्य मुनि से विन्ध्याचल को रोकने का आग्रह किया। आग्रह स्वीकार कर अगस्त्य ऋषि विन्ध्याचल के यहां गये। गुरु को आते देख विन्ध्याचल गुरु के चरण पर झुक गये। महर्षि यह कह कर मैं दक्षिण की ओर जा रहा हूँ। पुनः लौटूंगा, तब तक तुम ऐसा ही रहना। दक्षिण समुद्र के तट के किनारे पर्वतशिखर पर आज भी महर्षि अगस्त्य का आश्रम है।

पुलह-पुलस्य तथा अगस्त्य ऋषियों के ही वंशज रावण आदि राक्षस और अधिकांश द्रविड़ ब्राह्मण वंशज हैं। वनवासकाल में सीता की खोज करते हुये श्रीराम तथा लक्ष्मण जी इनके आश्रम आये थे। इन्होंने दिव्य

सत्कार कर दिव्य सम्मोहनास्त्र तथा कतिपय मन्त्रों के प्रयोग से दिव्यास्त्र दिये थे। इन दिव्यास्त्रों से श्रीराम लक्ष्मण भयंकर राम-रावण युद्ध में रावण को मार पाये थे। एक ही ऋषिप्रदत्त सम्मोहनास्त्र से रावण के समान ही भयंकर बल-पौरुष वाले खर-दूषण और त्रिशिरा राक्षसों को भारी सेना के साथ श्रीराम ने परस्पर सम्मोहित कर आपस में ही लड़ाकर मार डाला था। इतना ही नहीं राम-रावण के भयङ्कर संग्राम में भगवान शिव की कृपा से रावण के हजारों शिर काटते-काटते श्रीराम थक गये थे। इस स्थिति का उल्लेख करते हुये महर्षि, वाल्मीकि ने वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड में 'आदित्यहृदय-स्तोत्र' के प्रथमश्लोक में ऐसा वर्णन करते हुये कहा है कि देवों और ऋषियों-महर्षियों के हाहाकार करने पर महर्षि अगस्त्य जी तत्काल अपने आश्रम से रातोंरात संग्राम स्थल पर आकर सूर्योदय से पूर्व ही 'श्रीआदित्य-हृदय' का उपदेश श्रीराम को देकर कहे कि हे राम! इस समय तत्काल स्नान कर आप इस स्तोत्र का तीन पाठ कर लें। इस शत्रुहन्ता स्तोत्र के प्रभाव से आज ही आप रावण को मार देंगे। जैसे—

ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम्।
रावणञ्चाग्रतो दृष्टा युद्धाय समुपस्थितम्॥
दैवतैश्च समागम्याऽगस्त्यो भगवांस्तथा।
उपगम्याऽब्रवीद्राममगस्त्यो भगवाँस्तथा॥
राम राम महाबाहो श्रृणुगृह्यं सनातनम्।
आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम्। इत्यादि।

—(वा० रा०, आदित्यहृदयस्तोत्र, लङ्काकाण्ड)

महर्षि अगस्त्य जी से प्राप्त इस विद्या का प्रयोग कर श्रीराम रावण को समस्त राक्षसों सहित संहार कर रामराज्य स्थापित कर सके थे।

एक अन्य प्रसङ्ग के अनुसार महर्षि अगस्त्य जी को योगबल से यह ज्ञात हो गया कि श्रीराम का वनवास हो गया है। चौदहवर्ष का वनवास करने श्रीराम जी की पत्नी सीता जी तथा छोटे भाई लक्ष्मण जी भी साथ आयेंगे। श्रीराम अयोध्या से चलकर दण्डकारण्य के लिये प्रस्थान कर प्रयाग में महर्षि भरद्वाज के निर्देश पर चित्रकूट पर्वत पर जिसे रामगिरि भी कहते हैं, लगभग बारह वर्षों तक वहीं रहे। फिर ऋषियों-मुनियों का दुःख सुनकर असुरों का संहार करने के लिये आगे दक्षिण दिशा की ओर ऋषियों-मुनियों

से मिलते हुये ही ऋष्यमूक पर्वत पर आये थे। अरण्य के बीच दो भयंकर राक्षस नारद जी से शापित होकर दण्डकारण्य में तपस्वियों को सीधे खा जाते थे। श्रीराम पर यह आक्रमण करेंगे ऐसा सोचकर अगस्त्य जी उस स्थान पर गये। बस क्या था? दोनों महर्षि अगस्त्य जी को खाने दौड़ पड़े, पर अगस्त्य इन दोनों को पहले ही पकड़ कर अपने योगबल से उस आतापी और बातापि नामक राक्षसों को खा गये। पेट में खुदुर-बुदुर करने पर अपने पेट पर तीन बार हाथ फेरकर 'पच पच' कहकर हजम कर गये। श्रीराम का भावी संकट टल गया।

एक अन्य प्रसङ्ग के अनुसार दक्षिण समुद्र के ऊपर ही उत्तर तट पर महर्षि अगस्त्य जी का आश्रम था। आश्रम के नीचे समुद्र तट पर टिट्टिभ (टिटिहरी) दम्पति रहते थे। दोनों प्रतिवर्ष सन्तान की कामना से अण्डा देते थे, किन्तु समुद्र अपनी लहरों में डुबा देते थे। आजिज होकर दोनों पक्षी अगस्त्य जी के पास जाकर रोते हुये अपना दुःख निवेदित किये। सन्त का कोमल हृदय द्रवित हो गया। सिन्धु के तट पर आकर उन्होंने तीन आचमन कर समस्त समुद्र को ही पी गये। पुनः जल के जीवों का दुःख देख सागर को टिटिहरियों के अण्डे को पुनः नष्ट न करने का वचन लेकर अपने कान के द्वारा पुनः समुद्र को छोड़ दिये। कहा जाता है समुद्र का मीठा जल तभी से खारा हो गया।

अतः उपर्युक्त पेट के तत्काल पाचन कर देने वाला मन्त्र महर्षि अगस्त्य जी की महिमा से दिया गया है, जिसका उल्लेख महर्षि अगस्त्य ने अपनी अगस्त्यसंहिता में स्वयं किया है।

इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ के अतिरिक्त अन्य कई मन्त्रविज्ञान के ग्रन्थ हमने लिखा है। जिज्ञासुओं को उन-उन ग्रन्थों से अपने-अपने कार्य के अनुसार खोज कर मन्त्रों द्वारा कार्य करने का मेरा आग्रह है 'पुरश्चर्यार्णव' नामक महान ग्रन्थ तीन भागों में प्रकाशित है, जिसका तीसरा भाग सब से महत्त्वपूर्ण है। यहाँ हजारों प्रकार के सिद्धमन्त्र विधि के साथ हमने इस तन्त्र-मन्त्र विद्या को जीवित रखने के लिये यह सभी प्रयास किया है। इन मन्त्रों को प्रायः भगवान शिव ने ही कहा है। अतः इन मन्त्रों पर अविश्वास न करें, विधि से मन्त्रानुष्ठान करने पर क्या नहीं मिलेगा? इति।

●

ग्रन्थकार परिचय

एवं विश्वमिदं सर्वं शिवशक्तिमयं यतः।
तेन सा विश्वजननी सर्वकल्याणकारिणी ॥१॥
संसारभोगकामानां पुत्रसंततिकामिनाम्।
भुक्तिमुक्तिश्च कामानामिच्छतां मातुरर्चनम् ॥२॥
पार्वती एव दुर्गा सा जननी अपराजिता।
महाकाली महालक्ष्मी महासस्वती स्वरूपिणी ॥३॥
जननी जनकाभ्याञ्च भवोभवानिभ्याञ्च ननु।
सर्वे देवाश्च देव्यश्च प्रभवन्ति जगतीतले ॥४॥
एवं हृदिविचिन्त्याशु शुभाशुभकर्मणाम्।
प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च शास्त्रतो विनिगम्यताम् ॥५॥
देवरियाजनपदे भार्गवकोड़राख्य ग्रामके।
भार्गवे वंशे समुत्पन्नः राजनाथोऽहं नामकः ॥६॥
मातृपितृगुरुणाञ्चोपकारं हि संस्मरन्।
विश्वनाथन्नपूर्णायै समर्पये कृतिमिमाम् ॥७॥

इति शिवम्।

पुस्तक-सूची

01. अष्टाध्यायी-सूत्रवृत्तिः । महर्षिपाणिनी । (सम्पूर्णवार्तिकसहित)
—सम्पादक : विष्णु प्रसाद दह्राल 'विष्णु गुरु'
ISBN 978-81-920895-6-8 मूल्य : 250.00

02. शान्तिशतकम् । (हिन्दीटीकासहित)
—सम्पादक : डॉ. रामबहादुर शुक्ल
ISBN 978-93-82354-08-6 मूल्य : 225.00

03. शैव रामायणम् । (हिन्दीटीकासहित)
—सम्पादक : डॉ. रामबहादुर शुक्ल
ISBN 978-93-82354-05-5 मूल्य : 150.00

04. श्रीराम गीता । (हिन्दीटीकासहित)
—सम्पादक : डॉ. रामबहादुर शुक्ल
ISBN 978-93-82354-02-1 मूल्य : 150.00

05. विन्ध्याचल-माहात्म्य । (विन्ध्यखण्ड) (हिन्दीटीकासहित)
—सम्पादकद्वय : रघुनाथ दूबे, ओमप्रकाश मिश्र शास्त्री
ISBN 978-93-82354-06-2 मूल्य : 500.00

06. गोरखनाथ पीठ एवं पीठ के योगियों की महिमा ।
प्रो. राजनाथत्रिपाठीकृत । ज्योत्स्नाहिन्दीटीका -
—सम्पादकद्वय : डॉ. उमेशत्रिपाठी डॉ. साधनात्रिपाठी
ISBN 978-93-82354-10-9 मूल्य : 200.00

01. कुण्डली दर्पण । (अनूप मिश्र) (जन्मपत्री रचना की प्रथम पुस्तक) हिन्दीटीका
—सम्पादक : डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल
ISBN 978-93-82354-00-0 मूल्य : 60.00

02. चमत्कार चिन्तामणि । (कुण्डली के द्वादश भावों का सम्यक् विवेचन)
(हिन्दीटीकासहित) —सम्पादक : डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल
ISBN 978-81-920895-9-1 मूल्य : 30.00

03. होडाचक्र । (ज्योतिष ज्ञान की प्रथम पुस्तक) (हिन्दीटीकासहित)
—सम्पादक : हरिप्रसाद द्विवेदी मूल्य : 15.00

04. बृहज्ज्योतिषसारः । (हिन्दी टीका सहित)
—सम्पादक : दिनमणि पाण्डेय
ISBN 978-81-920895-4-6 मूल्य : 120.00

05. भावकुतूहलम्। भाव मिश्र। (हिन्दीटीकासहित) (उ. प्र. संस्कृत अकादमी लखनऊ द्वारा पुरस्कृत। —सम्पादक : **डॉ. भारतभूषण मिश्र**
ISBN 978-81-920895-5-3 मूल्य : 120.00

06. गणकतरङ्गिणी। सुधाकर द्विवेदी।
—सम्पादक : **डॉ. भारतभूषण मिश्र**
ISBN 978-81-920895-2-2 मूल्य : 120.00

07. सन्तान दीपिका। (दैवज्ञरामगोपाल शर्मा) (संस्कृत-हिन्दीटीकासहित) (उ० प्र० संस्कृत अकादमी लखनऊ द्वारा पुरस्कृत)
—सम्पादक : **डॉ. भारतभूषण मिश्र**
ISBN 978-81-920895-8-4 मूल्य : 200.00

08. होरासारः। हिन्दी टीका सहित। (उ० प्र० संस्कृत अकादमी लखनऊ द्वारा पुरस्कृत)
—सम्पादक : **डॉ. भारतभूषण मिश्र**
ISBN 978-93-82354-02-4 मूल्य : 350.00

09. लघुजातकम्। दैवज्ञ वाराहमिहिर विरचितम्।
भट्टोत्पलकृत संस्कृतटीकया सह सावित्रीहिन्दीटीका सहितम्।
—सम्पादक : **डॉ. कृष्ण कुमार पाण्डेय**
ISBN 978-93-82354-09-3 मूल्य : 75.00

01. श्रीअन्नपूर्णास्तोत्रम्। (कवच-स्तुति-अष्टोत्तरशतनाम सहित)
—सम्पादक : **ओमप्रकाश मिश्र शास्त्री** मूल्य : 12.00

02. अन्नपूर्णा व्रतकथा। (व्रतविधान, मन्त्रजपविधि, स्तोत्र, विविधमन्त्र एवं चालीसा)
—सम्पादक : **ओमप्रकाश मिश्र शास्त्री** मूल्य : 30.00

03. आदित्यहृदयस्तोत्रम्। (सूर्यकवच-सूर्यचालीस-नवग्रहस्तोत्र-चाक्षुषोपनिषद्-गणेशार्थव-शीर्ष समन्वितम्) —सम्पादक : **ओमप्रकाश मिश्र शास्त्री** मूल्य : 15.00

04. वैरिनाशनं कालीकवचम्। (महाकालीस्तोत्र-अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र-अष्टकादि सहित)
—सम्पादक : **ओमप्रकाश मिश्र शास्त्री** मूल्य : 15.00

05. कनकधारास्तोत्रम्। (श्रीसूक्त-लक्ष्मीसूक्त-धनदालक्ष्मीस्तोत्रसहितम्) (हिन्दीटीकासहित)
टीकाकार : आचार्य पण्डित शिवदत्तमिश्र शास्त्री
—सम्पादक : **ओमप्रकाश मिश्र शास्त्री** मूल्य : 12.00

06. सिद्ध-सरस्वती-स्तोत्रम्। (सरस्वतीस्तोत्र-स्तुति-कवच-अष्टक-चालीसा-आरती-वन्दना-गणेश-स्तवराज-कालभैवाष्टकसहिंतम्)
—सम्पादक : **आचार्य पं. शिवदत्तमिश्र शास्त्री** मूल्यं : 12.00

07. प्रत्यङ्गिरास्तोत्रम्। (विपरीतप्रत्यङ्गिरासमन्वितम्) (हिन्दी टीका सहित)
—सम्पादक : **आचार्य पं. शिवदत्तमिश्र शास्त्री** मूल्य : 25.00

हमारे प्रकाशन

अष्टाध्यायी–सूत्रवृत्तिः। महर्षिपाणिनी । सम्पूर्णवार्तिक सहित । सम्पादक – विष्णुप्रसाद दहाल "विष्णु गुरु"
ISBN 978-81-920895-6-0

शान्ति–शतकम्। हिन्दी टीका सहित । सम्पादक – डॉ राम बहादुर शुक्ल। ISBN 978-93-82354-08-6

शैव रामायणम्। हिन्दी टीका सहित । सम्पादक – डॉ राम बहादुर शुक्ल। ISBN 978-93-82354-05-5

श्री राम गीता। हिन्दी टीका सहित । सम्पादक – डॉ राम बहादुर शुक्ल। ISBN 978-93-82354-03-1

विन्ध्याचल–माहात्मय। (विन्ध्य–खण्ड)। हिन्दी टीका सहित। सम्पादकद्वय–रघुनाथ दुबे, ओमप्रकाश मिश्र शास्त्री। ISBN 978-93-82354-06-2

गोरक्षनाथपीठ एंव पीठ के योगियों की महिमा। प्रो. राजनाथत्रिपाठीकृत। ज्योज्सना हिन्दी टीका। सम्पादकद्वय – डॉ उमेश त्रिपाठी, डॉ साधना त्रिपाठी। ISBN 978-93-82354-10-9

मन्त्रविज्ञान । प्रो० राजनाथ त्रिपाठी। ISBN 978-93-82354-12-3

दुर्गार्चन सृतिः अर्थात् दुर्गार्चनपद्धतिः। हिन्दी टीका सहित। सम्पादक–ओमप्रकाश मिश्र शास्त्री।
ISBN 978-81-920895-0-8

दुर्गा सप्तशती। (प्रथम बार सात सौ श्लोकों के साथ) सम्पादक–रघुनाथ दुबे, ओमप्रकाश मिश्र शास्त्री
ISBN 978-81-920895-3-5

विलोम दुर्गा सप्तशती। (प्रथम बार सात सौ श्लोको के साथ) सम्पादक–रघुनाथ दुबे, ओमप्रकाश मिश्र शास्त्री। ISBN 978-81-920895-1-5

मन्त्रप्रतिलोम दुर्गा सत्पशती। सम्पादक – आचार्य पण्डित शिव दत्त मिश्र शास्त्री

मातृकाभेदतन्त्रम् । हिन्दी टीका सहित। सम्पादक– रघुनाथ दुबे, ओमप्रकाश मिश्र शास्त्री
ISBN 978-81-920895-7-7

बृहज्ज्योतिषसारः । हिन्दी टीका सहित। सम्पादक – डॉ दिनमणि पाण्डेय। ISBN 978-81-920895-4-6

गणकतरंगिणी। सुधाकर द्विवेदी। सम्पादक – डॉ भारत भूषण मिश्र। ISBN 978-81-920895-2-2

सन्तान दीपिका। दैवाज्ञरामगोपाल शर्मा। संस्कृत हिन्दी टीका सहित। (उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी लखनऊ द्वारा पुरस्कृत)। सम्पादक – डॉ भारत भूषण मिश्र। ISBN 978-81-920895-8-4

होरासारः । हिन्दी टीका सहित। (उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी लखनऊ द्वारा पुरस्कृत)। सम्पादक – डॉ भारत भूषण मिश्र। ISBN 978-93-82354-02-4

लघु जातकम् । दैवज्ञ वाराहमिहिर विरचितम् भट्टोत्पल कृत संस्कृत टीकाया सह सावित्री हिन्दी टीका सहितम् । सम्पादक – डॉ कृष्ण कुमार पाण्डेय। ISBN 978-93-82354-09-3

कुण्डलीदर्पण। अनुप मिश्र। (जन्मपत्री रचना की प्रथम पुस्तक) हिन्दी टीका सहित। सम्पादक – डॉ रमेशचन्द्र शुक्ल। ISBN 978-93-82354-00-0

चमत्कार चिन्तामणिः। (कुण्डली के द्वादश भावों का सम्यक् विवेचन)। हिन्दी टीका सहित। सम्पादक – डॉ रमेशचन्द्र शुक्ल। ISBN 978-81-920895-9-1

होडाचक्र। (ज्योतिष ज्ञान की पुस्तक) हिन्दी टीका सहित। सम्पादक – डॉ हरिप्रसाद द्विवेदी

पुस्तक प्राप्ति स्थान : विश्वभारती संस्कृत संस्थान
दौलतपुर रोड (आवास विकास कालोनी के पास) पाण्डेयपुर, वाराणसी - 221002
सम्पर्क सूत्र - 9450540135 | ईमेल - vbss591@gmail.com

मन्त्र विज्ञान

₹ 125